॥ ओ३म् ॥

ओ३म्

पं० भीमसेनजी और आर्यसमाज

लेखक

सत्यव्रत शर्म्मा द्विवेदी

प्रकाशक

स्टार प्रेस, प्रयाग ।

प्रथमवार] [मूल्य ।)

ओ३म्

भूमिका।

प्रिय वाचक वृन्द! पं० भीमसेन शर्मा सम्पादक ब्राह्मण सर्वस्व इटावा के नाम से प्रायः सभी परिचित हैं। आप ने आर्य्यसमाज में रह कर उसकी अपूर्व सेवा की है, यह बात भी किसी विचार-शील से अप्रकट नहीं है। यद्यपि आर्य्य-सामाजिक जीवन व श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी के साथ रहने के समय में भी कभी २ माननीय पं० जी के मस्तिष्क में इधर उधर भागने की सूझती रही तथापि उसी समय उचित प्रतीकार करने व पं० जी के क्षमा मांगने पर ठीक होते रहे। परन्तु इटावा में चूरू रामगढ़ निवासी सेठ माधव प्रसाद जी का अग्निष्टोम यज्ञ कराने के पश्चात् यज्ञ की पूर्णाहुति के साथ साथ पं० जी ने अपने आर्य्यसामाजिक जीवन की भी आहुति दे डाली। इसके अनन्तर आर्य्यसिद्धान्त मासिक पत्र के स्थान में ब्राह्मण सर्वस्व मासिक पत्र निकाल कर सर्वसाधारण को यह सूचना दी कि आर्य्यसमाज को मैंने इसलिये छोड़ दिया कि आर्य्यसमाज वैदिक कर्मकाण्ड को नहीं मानता; आर्य्य-समाज के अनेक सिद्धान्त वेद-विरुद्ध हैं, इत्यादि।

पाठक वर्ग! बस इस पुस्तक द्वारा स्वयं पण्डित जी की लेखनी लिखित लेखों के आधार पर यह दिखलाया गया है कि पं० जी वस्तुतः सत्यता के लिये सनातनी नहीं बने किन्तु क्रमशः वित्तैषणा को लक्ष्य में रख कर सनातन-धर्म का आश्रय लिया है। पाठक, आद्योपान्त समस्त पुस्तक का अव-

लोकन कर विचारें कि क्या इतना महान् विद्वान् इस प्रकार गिरे। मुझे एक कवी का वाक्य स्मरण आया वह यहां पं० जी के विषय में सम्यक् प्रकार संघटित होता है, यथाः—

सरसो विपरीतश्चेत् सरसत्वं नैवमुञ्चति।
साक्षरा विपरीतश्चिद्राक्षसा एव केवलम्॥

अर्थात् यदि सरस पुरुष विपरीत हो जावे तो उसका सरसत्व दूर नहीं होता है अथवा सरस शब्द का उलटा कीजिये तो सरस ही रहेगा परन्तु साक्षरा का उलटा कीजिये तो राक्षसा हो जायगा अर्थात् विद्वान् पुरुष विपरीत हो जावे तो देश, जाति, धर्म सब का घातक बन जाता है जैसा कि माननीय पं० जी ने कर दिखाया—अस्तु हम जनता से प्रार्थना करते हैं कि पं० जी समाज से क्यों पृथक् हुये वा किये गये — इस कौतूहलजनक कठिन समस्या को यथावत् जानना चाहती है तो इस पुस्तक का पाठ करे।

साथ ही इसके में यह निवेदन भी कर देना समुचित समझता हूँ कि मुझे माननीय पं० जी के द्वारा ही विद्या व शिक्षा प्राप्त हुई है; द्वितीय पं० जी मेरे पूज्य श्वसुर भी हैं अतएव मैंने यथाशक्ति पुस्तक भर में कोई शब्द पं० जी के अन्तःकरण को कष्टदायक नहीं लिखा, कदाचित् कोई शब्द ऐसा हो तो अवश्यमेव पं० जी क्षमा करें। मैं यह भी जानता हू कि इस पुस्तक के निकलने पर पं० जी व उनके अनुयायी समालोचना भी करेंगे। अतएव समालोचक ध्यान रखें कि समालोचना करते समय विषयान्तर में न जावें और जातीय आक्रमण व अनुचित कटाक्ष करें अन्यथा लेखनी मेरे हाथ

में भी है और "सहवासी विजानाति चरित्रं सहवासिनः" अतएव सम्यक् सभ्य शब्दों द्वारा भले ही प्रसन्नता पूर्वक लिखें लिखावें, क्यों—मैं नहीं चाहता कि पं० जी के विषय में कुछ सभ्यता का परित्याग कर लिखूं परन्तु लेख का उत्तर देने में मुझे विवश होना पड़ेगा।

किमधिकम्

पं० जी का नम्रसेवक :—सत्यव्रत शर्म्मा द्विवेदी

स्थान सिकन्दरपुर
जि० फ़र्रुख़ाबाद।

ओ३म्
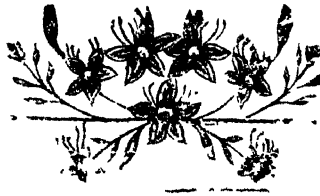
पं० भीमसेन और आर्य्यसमाज।

मान्यवर पं० भीमसेन जी शर्मा का जन्म ग्राम लालपुर
ज़िला एटा में हुआ है। आपके चार सहोदर भ्राता
हैं। सब से लघु पं० भीमसेन जी हैं जो कि हमारी
पुस्तक के देवता हैं। पं० जी ग्रामीण प्रथा के अनुसार आरम्भिक
शिक्षा प्राप्त करते रहे एवं कुछ टूटी फूटी देवनागरी तथा
उर्दू पढ़ने लगे तदनन्तर किसी विशेष कारण से रुष्ट हो फर्रुखा-
बाद में पहुँचकर श्रीस्वामीदयानन्द सरस्वती स्थापित पाठ-
शाला में संस्कृत विद्याध्ययन करते रहे और यथा समय श्री
स्वामी जी से भी पढ़ते रहे जैसा कि स्वयं पं० जी ने ब्राह्मण
सर्वस्व में स्वीकार किया है। विद्याध्ययन के अनन्तर पं० जी
श्री स्वामी जी के साथ वैतनिक हो लेखक का कार्य्य करते
रहे और यथासमय प्रूफसंशोधन एवं संस्कृत से भाषानुवाद भी
करते रहे। इस प्रकार संवत् १९३८ तक जिस किसी प्रकार
रहकर श्रीस्वामी जी के साथ निर्बाह करते रहे। संवत् १९३८
के पूर्व संवत् १९३७ में पं० जी छुट्टी लेकर निज जन्म भूमि को
आये। तब पं० जी से एक उत्तम रसोइया श्री चौधरी ज़ालिम
सिंह जी के द्वारा लाने को श्री स्वामीजी ने कह दिया था
परन्तु पं० जी श्री चौधरी जी से न कहकर अपने किसी
भ्राता को साथ लेगये जैसा कि निम्न लिखित श्री स्वामी जी
के पत्र से स्पष्ट ज्ञात होता है।

श्रीस्वामीजी का पत्र चौधरी ज़ालिमसिंहजी के नामः—

चौधरी ठाकुर ज़ालिमसिंह जी, आनन्दित रहो। मेरा विचार जयपुर में १५ दिनों तक ठहरने का है पश्चात् अजमेर जाना होगा। यहां के मनुष्यों का सुधार, असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। बहुत काल में सुधरेंगे तो सुधरेंगे नहीं तो अधिक बिगड़ जांयगे।

अब देखिये कि जैसी भीमसेन की इच्छा थी वैसी ही १५) रुपये माहवारी और १) हाथ खर्च और खाने में ३) रु० से कम नहीं लगते। इसने एक महींना कि जब तकउसका मासिक पूरा न हुआ था तब तक काम भी अच्छा करता था अब ठीक नहीं करता। ये लोग भीतर के मैले और ऊपर के शुद्ध दिखलाई देते हैं। अच्छा जब तक बनेगा तब तक रखना होगा; बहुत अपराध करेगा तब निकास देना पड़ेगा। देखिये मैं ने इस से कहा था कि जो तेरा भाई कर सके तो लाना नहीं आप के माफ़ेत रसोइया लानेको कहा था परन्तु लोभ का मारा अपने महा मूर्ख जड़-बुद्धि भाई को ले आया। आज इसको रसोई बनाते १५ दिन हो चुके, कुछ भी न आया। और न आगे आने की भी आशा है। आज भी इस ने रसोई जलादी। अब आप को मैं लिखता हूँ कि जो कोई रसोइयां चतुर और धर्मात्मा आप की जान में हो तो यहां जयपुर में भेज दीजिये और जो वहां न मिलसके तो लिखये, यहाँ से तजवीज़ हो जायगा।

सब से मेरा नमस्ते कह दीजियेगा।

मिती चैत्र शुक्ल ८ गुरुवार संवत् १९३८ त० ६ मार्च

हस्ताक्षर :—दयानन्द सरस्वती।

उपर्युक्त स्वामी जी का पत्र जो चैत्र में चौ० ज़ालिम सिंह जी के नाम भेजा है पं० जी के प्रकृत कौटल्य का बोध कराता है। इसके पश्चात् पं० जी ने कदाचित् कुछ अधिक गोल माल किया ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि चैत्र के पश्चात् ८ मास वीतने पर मार्ग वदि ५ पञ्चमी को श्रीस्वामी जी ने पं० भीमसेन जी को उनके कुत्सित व्यवहारों के कारण अपने पास से पृथक् कर दिया जैसा कि श्रीस्वामी जी के पत्र से जो मुन्शी समर्थदान जी मैनेजर वैदिक प्रेस को लिखा था. स्पष्ट है :—

पत्र श्रीस्वामी जी का बनाम मुन्शी समर्थ-दान मैनेजर वैदिक प्रेस—

मुन्शी समर्थदान जी आनन्दित रहो '

विदित हो कि कई एक पत्र भेज चुके हैं, एक का भी प्रति-उत्तर नहीं मिला, क्या कारण है. तुम्हारा शरीर तो स्वस्थ है, जैसा हो वैसा शीघ्र लिखो और भेजे हुए पत्रों का भी उत्तर भेजना।

" आज अत्यन्त अयोग्यता के कारण भीमसेन को सब दिन के लिये निकाल दिया है। उसको मुख न लगाना; लिखे लिखावे तो कुछ ध्यान मत देना।

मार्गवदि ५ रवि उदयपुरः—दयानन्द सरस्वती

अगहन मांस में श्री स्वामीजी ने मान्यवर पं० जी को पृथक् कर दिया। इस के पश्चात् पं० जी कदाचित् अपने घर चले आये-ऐसा पत्र व्यवहार से प्रतीत होता है। पश्चात्

चौ० ज़ालिम सिंह जी ने मास फाल्गुन में कोई पत्र श्री स्वामी जी की सेवा में पं० जी की सिफ़ारिश में भेजा ऐसा निम्नाङ्कित पत्र से जो उक्त चौधरी साहब के नाम शाहपुरा स्टेट से स्वामी जी ने चैत्र बदी ५ को भेजा ज्ञात होता है।

नक़ल पत्र जो चौधरी ज़ालिमसिंह जी के पत्र के उत्तर में श्री स्वामी जी ने शाहपुरा से भेजा, चैत्र बदी पञ्चमी को—

ओ३म्

श्रीयुत चौधरी ज़ालिम सिंह जी, आनन्दित रहो।

जब वह स्वीकार पत्र छपेगा तब एक कापी तुम्हारे पास भेज देंगे। भीमसेन को न हम अपने पास वा न अन्यत्र कुछ काम देना चाहते हैं। वह काम करने में अयोग्य और वह स्वभाव का भी बहुत बुरा आदमी है। हम उसके विषय में पहिले भी लिख चुके हैं। और वह न किसी आर्य्य समाज में रहने के योग्य है: यदि कहीं जायगा तो बुरे हवाल निकाला जायगा। अन्यत्र जहां उसकी इच्छा हो वहाँ जाय चाहे न जाय उसकी खुशी। परन्तु हम उसको नौकर वा कहीं काम कराना नहीं चाहते। यह सब एक जात बद्री ब्राह्मण सिकन्दरपुर के सदृश हैं। चाहे इन के ऊपर कितनी दया करो वे कृतघ्नता ही करते जाते हैं। जबसे वह गया है तब से जो पुरुष हमारे पास हैं आनन्द में रहते हैं। यदि वह होता तो न जाने अबतक कौन जाता कौन रहता। केवल वह दम्भी और मिथ्याचारी है।

शाहपुरा मिती चै० ब० ५ बुधवार संवत् १९३९।

हस्ताक्षर:—दयानन्द सरस्वती

चैत्रमास के अनन्तर पं० भीमसेन जी ने किसी मास में एक पत्र श्रीस्वामीजी के पास भेजा ऐसा उक्त पं० जी के ही निम्न-लिखित पत्र से ज्ञात होता है; मास व तिथि का ठीक पता ज्ञात नहीं होता। क्योंकि पं० जी के निम्नाङ्कित पत्र में जो दूसरा पत्र है; तिथि आदि नहीं लिखी परन्तु यह अवश्य लिखा है—"एक पत्र आपके निकट भेज चुका हूँ, अनुमान है कि पहुँचा होगा" इत्यादि, इस से यह स्पष्ट सिद्ध है कि इस निम्नलिखित पत्र से पूर्व एक पत्र पं० जी ने और भेजा जो हमको प्राप्त नहीं हुआ एतदर्थ हम अपने पाठकों को यह नहीं बतला सकते कि पं० जी ने उसमें क्या लिखा अस्तु पाठकगण पं० जी के निम्न पत्र को देखकर उनके हार्दिक विचारों को भले प्रकार ज्ञात कर सकते हैं।

पत्र जो मान्यवर पं० भीमसेनजी ने श्री स्वामीजी की सेवा में भेजा :—

श्रीयुत प्रतिष्ठित स्वार्य्य स्वामी जी महाराजा भगवन् अभिवाद्ये !

विदित हो कि एक पत्र आपके निकट भेज चुका हूँ अनुमान है कि पहुँचा होगा। अब प्रार्थना यह है यद्यपि मेरी जीविका लग गई और सब संसार के लोग जीविका तो करते ही हैं परन्तु मेरा चित्त अब कहीं नहीं लगता क्योंकि आप जैसे शुद्ध पुरुष मुझको कोई नहीं दीखते। पहिले यह विचार नहीं किया यही मेरी भूल है और आप का यह कहना बहुत सत्य है कि जब तक मनुष्य को धक्का नहीं लगता तब तक बुद्धि नहीं आती। अब मेरा यही विचार है कि आप

का संग मैंने बहुत किया और आप को भी मेरे समान ठहरने वाला कमही मिला होगा: अब मेरे ऊपर कृपा कर के मेरे दोष आप निःशेष जानते हैं और कुछ मैं भी जानता हूँ सो आप चित्त से हटा दीजिये क्यों कि मैं सब दोषों को समूल छोड़ दूंगा। जिन २ बातों से मेरी आपकी बुद्धि में विरोध पड़ता, सो वे बातें अब कदाचित् किञ्चित् भी न करूंगा। अब मेरे पूर्वानुभूत अपराधों को क्षमा करके अपने चरण-कमलों के दर्शन कराइये।

रामानन्द को नमस्ते　　　　भवदनुग्रह-कांक्षी

भीमसेन शर्म्मा।

नोट:—क्या मान्यवर पण्डितजी सत्यता पूर्वक इस अपने लिखे पत्र और वर्तमान के भावों को सन्मुख रख कर हृदय में वर्तमान कृत्य पर पश्चात्ताप कर ईश्वर का भय कर हठ छोड़ेंगे ? अस्तु।

पाठक गण, उपर्युक्त पत्र के पश्चात् श्रीस्वामीजी का पत्र मान्यवर पं० जी के पास आया कि जिसकी स्वीकृत निम्न लिखित अपने पत्र में जो पुनः श्रीस्वामीजी के पास भेजा, की है। वह स्वामीजी का पत्र हमको प्राप्त नहीं एतदर्थ पाठकों से क्षमा चाहता हूं। मान्यवर पं० भीमसेनजी का दूसरा पत्र जो पं० जी ने निज ग्राम लालपुर ज़िला एटा से श्रीस्वामीजी की सेवा में मिती भाद्र कृष्ण १२ बुधवार को भेजा, यद्यपि इस पत्र पर संवत् नहीं लिखा तथापि अनुसन्धान से ज्ञात हुआ कि संवत् १९४० का है क्योंकि इसी विषय का दो एक पत्र चौ० ज़ालिमसिंहजी रईस रूप धनो ज़िला एटा का इसी भाद्र मास सम्वत् १९४०

का हमको प्राप्त हुआ जो पाठकवर्गों को आगे हमारे इसी पुस्तक में दृष्टिगत होगा जिससे हमारे अभीष्ट की सिद्धि होती है अस्तु

द्वितीय पत्र पं० भीमसेनजी का—

श्रीयुत् प्रतिष्ठताचार्य श्रीस्वामिन् भगवन्नभिवादये !

पत्र आपका आया देखके चित्त को अति प्रसन्नता हुई। इस मेरी जीविका लग जाने का निर्णय चौधरी ज़ालिम सिंह भी जानते हैं। और ठाकुर कुवँर जवाहिरसिंहजी को अब अग्निहोत्र सन्ध्या आदि बताया है सो करने लगे और मनुस्मृति का उपदेश सबको यहाँ सुनाता हूँ। यही मेरा मुख्य अभिप्राय है कि मैंने अब तक यहां आकर विरुद्ध काम कोई भी नहीं किया और आपसे भी सम्बन्ध रहना चाहिये। दूसरी जगह जैसी जीविका हो सकती है उससे जीविका भी कुछ कम आपके सम्बन्ध में नहीं है। ठीक ठीक मैं कहता हूँ कि आप का चित्त मुझसे भले ही विगड़ गया हो परन्तु मेरा चित्त आप की ओर से बिल्कुल नहीं हटा था। जो ऐसा होता तो मैं आपको पत्र नहीं लिखता मैं तो चले आने पर भी यही समझता था कि आप से मैं सर्वथा विरुद्ध नहीं हूँ; जो कदाचित् जीविका दूसरी जगह कर लेता और करलूं तो भी मैं आपसे सम्बन्ध बनाये रहना ही चाहता हूं। इसी कारण आपके निकट से आकर कोई विरुद्धाचरण नहीं किया और इस विषय में ज़ालिमसिंह आदि कई पुरुषों की सम्मति भी ऐसी ही रही कि स्वामीजी से सम्बन्ध नहीं टूटना चाहिये। मैं केवल ज़ीविका ही नहीं चाहता, आपके सम्बन्ध में और भी बहुत बातें अच्छी देखता हूं। अब मेरा ख़ास मनोरथ यह है

कि आपके सम्बन्ध में रह कर आगे व पीछे कुछ भी प्रतिकूल नहीं वर्तूंगा। आपसे कोई बात का हठ भी न किया करूंगा और मैं जैसा लिख चुका हूं व लिखता हूं यह बात विश्वास के योग्य है इसमें इस समय लिखने के सिवाय और दूसरा दृढ़ प्रमाण क्या दे सकता हूं। किसी मनुष्य की एक आध प्रतिज्ञा मिथ्या किसी कारण से होजाय और बहुत सी प्रतिज्ञा ठीक हो तो प्रतिज्ञा पर ही विश्वास करना होता है। जब आप अपने सम्बन्ध में रख कर फिर चार छः महीना बर्ताव देखेंगे तो प्रत्यक्ष से निश्चय हो जावेगा। एक मनुष्य का स्वभाव सदा एक सा नहीं बना रहता। देशकाल वस्तु-भेद से बदल भी जाता है। और जैसी बुद्धि मनुष्य की प्रथम हो और बीच में किसी कारण से बदल कर फिर पूर्वावस्था को स्वीकार करे तो फिर उसमें दृढ़ता हो जाती है, फिर चलायमान नहीं होता जिस समय पर बीच में मेरी बुद्धि में भ्रम पैदा हो गये थे तब ज़रूर ही आपके बहुतेरे कथनों को विरुद्ध जानने लगा था सो आप से भी कह दिया था कि मेरी बुद्धि इन २ विषयों में विरुद्ध है सो मैं जब आपके समीप से यहां आया तब अपनी इच्छा से और मेरे अभिप्राय को सुन जानके चौ० जालिमसिंह जी तथा भाई धर्मदत्त जी आदि सज्जनों के इस कथन से कि एकान्त में बैठ कर नवीन पुराणादि ग्रंथों की बातों को तथा शास्त्रों को स्वामीजी के कथन से मिला कर निश्चय करो पीछे जैसी मन्शा हो वैसा आचरण करना। इसमें छः महीने से विचारही करता रहा अब मेरे चित्त में यही निश्चय हुआ कि आप का उपदेश बहुत सत्य है। आप मेरे स्वभाव को जानते हैं कि जैसा मेरे भीतर कुछ होना था वैसा आप से

कह दिया करता था सोई अब भी जानिये। जो मेरा चित्त आपकी ओर ठीक न होता तो मैं अब भी नहीं लिखता। इस बात को आप भी जानते हैं कि चतुर्भुज आप के विरुद्ध सम्बन्ध से कितनी जीविका कर लेता है जो विरुद्ध किया चाहता तो चतुर्भुज से विद्या में कम नहीं था और आप के विरुद्ध पक्ष में मेरे सहायकारी भी बहुत थे यहां भी मनुस्मृति से भिन्न कोई कथा पुराण मैंने नहीं बांची। एकान्त में सत्यासत्य निश्चय के लिये भागवत् आदि का विचार तो अवश्य किया फिर आप क्यों कहते हैं कि जीविका ही करना तेरा प्रयोजन है जीविका अब भी मेरे लिये बहुत है इसी कारण अब चित्त मेरा स्थिर है। मेरा चित्त नहीं लगना इसका अभिप्राय यह है कि आप की और मेरी प्रीति अधिक बढ़ी और आप मुझ से अप्रसन्न रहे तो चित्त अच्छा नहीं रहता था अब जो आप प्रसन्न रहें तो मेरा चित्त यहां वा अन्यत्र सर्वत्र स्थिर है। मैं अभी हाल यह नहीं कहता कि अभी मेरी जीविका लगा दें किन्तु जो आप के पास पण्डित मौजूद हैं और अधिक पण्डित रखने की कुछ आवश्यकता न हो तो दो चार महीने में वा जब मेरे लिये कुछ काम समझें तब आज्ञा देवें आज्ञा देते ही शीघ्र उपस्थित होऊंगा। इस पत्र में मैंने अपने हृदय का सब आशय खोल दिया है अब मुझको आशा है कि इस पत्र का उत्तर शीघ्र और अवश्य देंगे।

(इत्यलं बुद्धिमतमेषु) शमस्तूभयत्र
रामानन्द ब्रह्मचारी को नमस्ते
तुम्हारा लेख अच्छा है।

आप से कृपाकांक्षी
भीमसेन शर्म्मा
मिती भाद्र कृष्ण १२
बुधवार।

ऊपर लिखा पत्र श्री स्वामी जी की सेवा में भेज के १७ दिन पश्चात् भाद्र शुक्ल १४ संवत् १९४० विक्रमीय को निम्न लिखित एक पत्र मान्यवर पं० भीमसेन जी शर्म्मा ने ब्रह्मचारी रामानन्द जी के पास भेजा जो ब्रह्मचारी श्रीस्वामी जी के साथ रहा करते थे।

पत्र पं० भीमसेनजी का रामानन्द ब्रह्मचारी के नाम—

रामानन्द ब्रह्मचारी, नमस्ते!

विदित हो कि पत्र तुम्हारा आया समाचार जाने। मेरे लिये श्रीस्वामी जी महाराज की आज्ञा लिखी सो भी जानी। चित्त प्रसन्न हुआ। मैंने उस पत्र का उत्तर श्रीस्वामी जी महाराज के नाम यथाभिप्राय लिख भेजा था आज १७ दिन हुये बड़ी आशा थी कि अब शीघ्र उत्तर आवेगा सो न जाने क्या कारण हुआ, मेरा पत्र हो न पहुँचा वा कुछ अकृपा बनी रही यदि अकृपा रही तो अब किस प्रकार मिट सकती है वैसा ही करूं यदि पत्र न पहुंचा हो तो मेरा अभिप्राय यही था कि 'बहुत पुस्तकों के देखने, एकान्त में विचारने, कृतघ्नता आदि दोषों के भय और बहुत सज्जनों के कहने से विचार होकर सब प्रकार आपका सिद्धान्त वेदानुकूल निश्चय होने से आपकी ओर विशेष प्रीति बढ़ी अब कोई कारण आपकी ओर से चित्त नहीं हटा सकता फिर जीविका भी अन्यत्र करने में कुछ विरोध होता है सो नहीं सहा जाता। मेरा लेख ही हाल सत्य मानिये फिर समीप आचरण करने से आपको प्रत्यक्ष हो जायगा" यह सब हाल श्रीस्वामीजी महाराज को सुनाकर जैसी आज्ञा देवें सो शीघ्र कृपा करके अवश्य उत्तर दे दीजिये मिती भाद्र शुक्ल १४ शनिवार। ह० (भीमसेन शर्म्मा)

मान्यवर पं० भीमसेन जी शर्मा के इस अन्तिम पत्र के (जो ब्रह्मचारी रामानन्दजी के नाम भेजा) १० दिन पूर्व श्री स्वामी जी ने निम्न लिखित पत्र श्री० चौ० जालिमसिंह जी रईस रुपधनो जिला एटा; के नाम उक्त पं० जी को प्रार्थना वा प्रतिज्ञा करने पर पुनः अपने समीप रख लेने की सम्मति लेने के निमित्त मिती भाद्र शुक्ल ४ संवत् १९४० को स्थान जोधपुर (मारवाड़) से भेजा।

श्री स्वामी जी का पत्र चौ० जालिमसिंह जी के नाम

ओ३म्

चौधरी जालिमसिंह जी, आनन्दित रहो।

भीमसेन के दो पत्र आजकल हमारे पास यहां आये हैं। विदित होता है कि धक्का खाने पर उसको कुछ बुद्धि आई है। अब आप लिखिये कि जब से यह वहां आया तब से उस की वर्त्तमान पोपलीला का अन्त हुआ वा नहीं। अच्छा, इस लिखने का प्रयोजन यह है कि फिर से वह हमारे पास नौकरी करना चाहता है और हमको उसके पूर्व चरित्रों से पूरा विश्वास नहीं होता कि यह जैसा लिखता है कि अब मैं सब बात समझ गया, आपसे विरोध कभी नहीं करूंगा, आप की सब बातों में मेरा दृढ़ विश्वास हो गया, अब मैं आपकी आज्ञानुसार सदा चलूंगा इत्यादि—परन्तु वह छुकड़-बुद्धि, है यदि उसको रख लें, पुनः अनुचित काम करे, निकालना हो तो अच्छी बात नहीं अब आप लिखिये—इसमें आप की क्या सम्मति है क्योंकि मैंने उसके बहुत से उल्टे चरित्र देखे हैं

और इसमें अच्छे भी गुण हैं परन्तु बुरे गुण ऐसे प्रबल हैं कि अच्छे गुणों को मात कर देते हैं। यदि परमेश्वर की कृपा से उसका स्वभाव सुधर गया हो तो बहुत अच्छी बात है परन्तु जब इस पत्र का उत्तर आप भेजेंगे तिस पश्चात् मेरी जैसी सम्मति होगी वैसी आपको और भीमसेन को लिख दूंगा। देखिये कि बद्री आपको और मुझको कैसा भलामानुस दीखता था और कैसा दुष्ट निकला इसलिये उत्तम, धार्मिक, पुरुषार्थी मनुष्य का सहसा मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ तो अवश्य है, बड़े भाग्य और परमेश्वर की कृपा से उत्तम पुरुष को उत्तम पुरुष मिलता है।

सब से मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। मुझको निश्चय है कि आप पक्षपात रहित यथार्थ लिखेंगे।

मिती भाद्र सुदी ४ संवत् १९४०

दयानन्द सरस्वती (जोधपुर, राज-मारवाड़)

इस ऊपर लिखे हुए श्रीस्वामीजी के पत्र का उत्तर ६ दिन पश्चात् चौधरी जालिमसिंहजी रईस रूपधनी (यह ग्राम पं० भीमसेनजी के ग्राम लालपुर के अति निकट है) ज़िला एटा ने भाद्र सुदी १० संवत् १९४० को श्री स्वामीजी की सेवा में स्थान जोधपुर को भेजा।

पत्र चौधरी जालिमसिंहजी का श्रीस्वामीजी के नाम—

ओ३म्

श्री युत मान्यवर विद्वज्जन भूषण श्री महाराज पण्डित स्वामी दयानन्दजी, नमस्ते!

मैं आपकी कृपा से आनन्द से हूँ। आपकी आरोग्यता और

अन्यजना परमात्मा से सदा चाहता हूं। आपके पत्र आने से बड़ा ही आनन्द हुआ। उत्तम धार्मिक मनुष्य का मिलना दुर्लभ है यह तो बहुतही ठीक है और सम्मति मेरी तो आपके सामने सूर्य को दीपक दिखाना है और आपका अनुमान भी मेरे प्रयत्न से बढ़कर है। निस्सन्देह दोनों गुण मिश्रित हैं परन्तु खुलांचजां कोई पोंरलीला नहीं की है और अबतक कोई काम आप के विरोध में भी प्रकट नहीं किया। यदि आप की मरज़ी होवे तो फिर भी अबकी बार उनके लिखने और प्रतिज्ञा को देख लीजिये। यदि आपकी आज्ञानुसार न चलें—निकाल बाहर कीजिये। आपकी कुछ हानि न होगी, उनकी हानि और हँसी होगी। यदि अबकी बार भी अपने कहे को भूलजावे तो फिर विश्वास कभी न कीजिये और चरित्र बद्री का देखकर तो यह समझ लिया कि पूरा विश्वास तो अपना भी समझ कर आपको लिखूंगा और जोधपुर में विराजमान रहने का कब तक अनुमान है, राज जोधपुर का वर्ताव उदयपुर के ही समान है या न्यूनाधिक ?

मिती भाद्रसुदी १० संवत् १६४०

आप का शिष्य—जालिमसिंह, रुपधनी

उपरि लिखित पत्र चौधरी जालिमसिंह का जब श्रीस्वामीजी के पास स्थान जोधपुर में पहुँचा तब श्रीस्वामीजी ने चौधरी साहब के लेखानुसार मान्यवर पं० भीमसेन जी को पुनः रख लेना स्वीकार कर लिया और इस स्वीकृति की सूचना पं० जी को भी पत्र द्वारा भेजी जैसा कि निम्न लिखित पत्र से जो चौधरी जालिमसिंहजी के नाम रुपधनी भेजा, स्पष्ट है। नीचे लिखा पत्र श्री स्वामीजी ने स्थान जोधपुर से चौधरी साहब

के पत्र लिखने के ६ दिन पश्चात् मिती आश्विनकृष्ण ४ गुरुवार संवत् १६४० को चौधरी साहब के नाम रुपधनी ज़िला एटा भेजा :—

पत्र श्रीस्वामीजी का चौधरी जालिमसिंह के नामः—

ओ३म् ।

चौधरी जालिमसिंहजी, आनन्दित रहो :—

पत्र आपका आया समाचार विदित हुआ । आपके लिखने के अनुसार उसका अपराध क्षमा करके बुला लेंगे या कहीं अन्यत्र भेज देंगे परन्तु उसको आप भी समझा देना और एक कहार की हमको ज़रूरी है यदि मिल सके तो आप लिखिये और आज भीमसेन के पास भी पत्र भेज दिया है और अब हम यहाँ से शीघ्र अन्यत्र जावेंगे और जब निश्चिन जाने का दिन होगा तब आपके पास पत्र भेज देंगे ।

सम्वत् १६४० आश्विन कृष्ण ४ गुरुवार

दयानन्द सरस्वती—जोधपुर (मारवाड़)

इस ऊपर लिखे श्रीस्वामीजी के पत्र का उत्तर चौधरी जालिमसिंहजी ने १२ दिन पश्चात् मिती कुआर सुदी १ सम्वत् १६४० को निम्न लिखित भेजा :—

पत्र चौधरी जालिमसिंह का श्रीस्वामीजी के नाम :—

ओ३म् ।

श्रीयुत् मान्यवर विद्वज्जन भूषण श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री पण्डित स्वामी दयानन्दजी महाराज अभिवादन !

आपकी कृपा से मैं आनन्द से हूं । आप की प्रसन्नता परमात्मा से चाहता हूं । पत्र आप का मेरे पास आया बड़ा हर्ष

हुआ। आपके लिखने माफक कहार तलाश किया, एक ने नौकरी करना चाहा परन्तु नौकरी ६) रु० महीना कहता है; मैंने २) कहे थे और यह भी कहा है कि काम अच्छा देने पर ३) भी हो सकते हैं और भीमसेन को मैंने, यह पत्र आप का आया था, वह सुना कर समझा दिया। उन्होंने इकरार किया है कि मैं श्रीयुत यानी आपकी नाराज़ी किसी तरह से न करूंगा। यदि करेंगे तो अपने किये को पहुँचेंगे।

मिती कुआर सुदी १ संवत् १९५०।

आपका आज्ञाकारी :—जालिमसिंह।

पाठकों को विशेष ध्यान से पठनीय विषय!

सहृदय विचारशील पाठक महोदय! हम लोगों के दुर्भाग्य से अथवा हतभागी भारत के दुर्दैव की प्रबलता से महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को इसी मास में भारतकुल-कलङ्की देश शत्रुओं ने इसी स्थान जोधपुर में विष दिया, अन्त तो गत्वा उसी रुग्णावस्था में ऋषि जी आबू होते हुये अजमेर आये और कार्तिक कृष्णा अमावस्या दीपावली के दिन भारत में अन्धकार कर स्वर्गवासी हुये। ऋषि जी के जीवन समय में ही मान्यवर पं० जी निज ग्राम लालपुर जिला एटा से अजमेर पहुँच गये थे। हमने यहां ऋषि के स्वर्गवास का वर्णन प्रसङ्गवशात् सूक्ष्मतया कर दिया, सविस्तर वृत ऋषि जी के जीवन चरित्र के अवलोकन से पाठकों को विदित है वा हो जायगा अतएव अनावश्यक ज्ञातपिष्टपेषण नहीं किया।

पाठक वर्ग ! ऊपर लिखे पत्र व्यवहार के पढ़ने से आप यह तो अवश्य ज्ञात करलेंगे कि मान्यवर पं० भीमसेन के आन्तरिक भाव कैसे व कहांतक धर्मारूढ़ हैं। आज पं० जी खुले शब्दों में जगन्मान्य ऋषि दयानन्द सरस्वती जी को लोभी लालची आटा दाल बेचने वाला सामान्य बुद्धि का कोई विशेष विद्वान् नहीं—जिसको नहीं समझते उसको पोप-लीला कहते थे - मोटे होने से गुरू आदि २ कुत्सित शब्दों से सम्बोधित कर कहते व लिखते हैं परन्तु शोक कि मान्यवर परिडत भीमसेन जी अपने पूर्व चरित्र पर टुक विचार नहीं करते। वास्तव में बात तो यह है कि पं० जी को यह स्वप्न में भी विचार न होगा कि कोई हमारे पत्रों को छाप कर सर्व-साधारण के समक्ष हमारे लेख व कृत्य प्रकाशित करेगा। अस्तु हम परिडत जी से सविनय प्रार्थना करते हैं कि वे कृपा करके एक बार ये निम्न लिखित पंक्तियां जो एक समय आप ने अपने हस्त कमल से अङ्कित की थीं पाठ करें और फिर कृतघ्नता कोई पाप है और ऐसा किसी धर्म्म पुस्तक में लेख देखा है अथवा कर्म-काण्ड के ही किसी विनयोग में पाया है तो "गतं न शोचामि" के अनुसार अथवा 'बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेहि' वा 'हेयं दुःख ममागतम्' इस योग सूत्र पर ही विचार करते हुए आगे होने वाले कृतघ्नता रूप महान पाप से बचिये। यद्यपि मैं आप को उपदेश नहीं देता तथापि आप के लेख से आप को स्मरण दिलाता हूँ, आशा है कि आप कृतज्ञ होंगे परन्तु यदि वर्त्तमान् प्रकृत विषयी हो देखा तो क्यों कृतज्ञ होंगे क्योंकि वहाँ कृतज्ञ होना कदाचित् नहीं है जैसा आपने स्वकर्मसे यथार्थ कर दिखलाया। अस्तु, लीजिये !

देखिये! पाठ कीजिये! यद्यपि ये पङ्क्तियां पूर्व लिखित पत्रों में उपस्थित हैं तथापि आपको व पाठकों के विशेष ध्यान देने योग्य ज्ञात कर पुनरपि यहां उद्धृत करता हूँ:—

मान्यवर पं० भीमसेनजी के शब्द स्वामीजी के विषय में।

"मैंने अब तक यहां आकर विरुद्ध काम कोई भी नहीं किया, आपका चित्त मुझसे भले ही बिगड़ गया है। परन्तु मेरा चित्त आपकी ओर से बिलकुल नहीं हटा। अब मेरा खास मनोर्थ यह है कि आपके सम्बन्ध में रह कर आगे वा पीछे कुछ भी प्रतिकूल नहीं वर्त्तूंगा, आपसे कोई बात का हठ भी न किया करूंगा। मैं जो लिखता हूं यह बात विश्वास योग्य है फिर चार छः महीना बर्त्ताव देखेंगे तो प्रत्यक्ष निश्चय हो जावेगा। मनुष्य का स्वभाव देश कालादि भेद से बदल जाता है और जैसी बुद्धि मनुष्य की प्रथम हो और बीच में किसी कारण से बदल कर फिर पूर्वावस्था को स्वीकार करे तो फिर उसमें दृढ़ता हो जाया करती है; फिर चलायमान नहीं होता। जिस समय पर बीच में मेरी बुद्धि में भ्रम पैदा हो गये थे तब ज़रूर ही आपके बहुतेरे कथनों को विरुद्ध जानने लगा था सो आपसे भी कह दिया करता था कि मेरी बुद्धि इन २ विषयों में विपरीत है फिर चौधरी जालिमसिंह व भाई धर्मदत्तजी आदि सज्जनों के कथनानुसार नवीन पुराणादि व शास्त्रों को आपके कथन से मिलाकर छः महीने तक विचार करता रहा। अब मेरे चित्त में यही निश्चय हुआ कि आपका उपदेश बिलकुल सत्य है, आप जैसे शुद्ध पुरुष मुझको कोई

नहीं दीखते; मेरे दोष आप विशेष जानते हैं और कुछ मैं भी जानता हूं सो आप चित्त से हटा दीजिये क्योंकि सब दोषों को समूल छोड़ दूंगा। मेरे पूर्वानुभूत अपराधों को क्षमा करके अपने चरण कमलों के दर्शन कराइये। बहुत पुस्तकों के देखने, एकान्त में विचारने, कृतघ्नता आदि दोषों के भय और बहुत सज्जनों के कहने से विचार होकर सब प्रकार आपका सिद्धान्त वेदानुकूल निश्चय होने से आपकी ओर विशेष प्रीति बढ़ी; अब कोई कारण आपकी ओर से चित्त नहीं हट सक्ता, इत्यादि"—

विज्ञ पाठकगण विचार करें कि मान्यवर पण्डित भीमसेन जी जब छः मास पर्य्यन्त स्वामी जी के उपदेश का नवीन पुराणादि व शास्त्रों के साथ मिलाकर विचार कर चुके जो स्वयं पण्डित जी ने ही स्वीकार किया और सर्व प्रकार स्वामीजी का उपदेश वेदानुकूल ही निश्चय हुआ फिर अब ब्राह्मण सर्वस्व में रेगिस्तानी इलहाम कहां से लिखा जाता क्योंकि स्वामीजी की सब बातें शास्त्रों से मिलाकर ही आपने उनका सिद्धान्त वेदानुकूल निश्चय कर लिया था। हम आशा करते हैं कि हमारे पाठकगण वर्त्तमान ब्राह्मण सर्वस्व के लेख और उपरि-लिखित पं० भीमसेन के लेख व प्रतिज्ञाओं को परस्पर मिलाकर वा विचार कर पं० जी के वास्तविक धर्म भाव से सम्यक् प्रकार परिचित हो जायंगे तथा अत्यावश्यक उत्तम परिणाम पर अवश्यमेव पहुँच जावेंगे कि जिसकी सर्व-साधारण को महती आवश्यक्ता है। अर्थात् यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि जिस समय मान्यवर पं० भीमसेनजी ने स्वामीजी के जीवन काल में अपराध किये और स्वामीजी के

कतिपय सिद्धान्तों में विरोध किया उस समय स्वामीजी ने अपराधों के कारण श्रीमान् को पृथक् किया और सिद्धान्त विरोध का यह पता स्पष्ट नहीं कि किन २ सिद्धान्तों में विरोध वा भ्रम पं० जी को था। परन्तु पं० जी की प्रतिज्ञा से सभी विज्ञ समुदाय को स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि अपराध निःशेष होने वा समूल छोड़ने की प्रतिज्ञा पं० जी ने की और सिद्धान्त विरोध के लिये भी स्पष्ट स्वीकार कर लिया था। और ६ मास विचारने, शास्त्रों के मिलाने से सर्व प्रकार स्वामीजी के सिद्धान्त को वेदानुकूल स्वीकृत किया था। और एतदर्थ ही १६-१७ वर्ष तक बड़ी अकाट्य युक्ति व प्रामाणों से उनकी पुष्टि करते रहे परन्तु अब नहीं ज्ञात कि रेगिस्तानी इलहाम कहां से हुआ कि जो सर्व प्रकार वेदानुकूल निश्चय किया वा मान और जिसका वृहत् काल तक बड़ी उत्तमता से पोषण किया वह अक्षरशः वेद विरुद्ध क्यों व कैसे? इससे तो यह स्पष्ट है कि यातो पूर्व पं० जी किसी महान् स्वार्थ में लिप्त हो अन्तः-करण के विरुद्ध छल पूर्वक प्रच्छन्न रूप से कुटिल नीति द्वारा स्वामीजी को व आर्य्य पबलिक को धोखा देते रहे वा अब सनातनी पबलिक को ऊपर लिखे भाव रखते हुये प्रवञ्चता करते हैं। यदि यह माना जावे कि पूर्व ही पं० जी अयथार्थ भाव से आर्य्य समाजी रहे और स्वार्थ सिद्ध करते रहे तो यह स्वयं सिद्ध है कि अधिक अभ्यस्त प्रवञ्चना भाव आमरण काल तक दूर नहीं होता अतएव हम अपने सनातन धर्माव-लम्बी भ्राताओं से निवेदन करते हैं कि पं० जी के वास्तविक स्वरूप स्वभाव से सचेत रहें।

ऋषि दयानन्द सरस्वती जी की भविष्यद्वाणी

प्रिय पाठकगण ! ऋषिजी ने अपने मृत्यु के १ वर्ष पूर्व मिती चैत्रबदी ५ दिन बुधवार सम्बत् १६३६ विक्रमीय को श्री चौधरी जालिमसिंहजी रईस रूपधनी ज़िला एटा को स्पष्ट निम्न लिखित वाक्य लिख कर भेजे थे किः—

"भीमसेन को ना हम अपने साथ वा न अन्यत्र कुछ काम देना चाहते हैं वह काम करने में अयोग्य और वह स्वभाव का भी बहुत बुरा आदमी है। हम उसके विषय में पहिले भी लिख चुके हैं और वह न किसी आर्य्य समाज में रहने के योग्य है: यदि कहीं जायगा, बुरे हवाल निकाला जायगा ॥ "ये लोग भीतर के मैले ऊपर के शुद्ध दिखलाई देते हैं,,

ऊपर लिखे श्री स्वामीजी के सद्वाक्य निदान सत्य निकले अर्थात् अनुमानतः स्वामीजी के लिखने के २०।२१ वर्ष पश्चात् जो लिखा था वही सत्य हुआ और पं० जी समाज से पृथक् किये गये इत्यादि स्वामीजी लिखित बातों का सत्य होना हमारे पाठकों को विदित हो ही चुका है अतएव विशेष न लिखते हुये हम यहां विराम करते हैं।

पाठक महोदय ! यहां तक जो वृत्त इस पुस्तक में निवेदन किया गया है वह सब जगन्मान्य ऋषि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन समय का है अर्थात् ऋषिजी के मृत्यु होने के अनन्तर का जो समाचार है वह अब आगे वर्णन किया जाता है।

मान्यवर पण्डित भीमसेनजी ऋषिजी की मृत्यु के समय अजमेर पहुँच गये थे। कुछ काल पश्चात् पण्डितजी वैदिक प्रेस जो सम्प्रति अजमेर में है पूर्व प्रयाग में था उसके प्रबन्ध-कर्ता नियत हुये। एवं यंत्रालय में प्रबन्ध तथा प्रूफसंशोधनादि का कार्य्य करते थे। साथही में मान्यवर विद्वदाग्रगण्य स्वर्गवासी पण्डित ज्वालादत्तजी शर्म्मा फर्रुखाबाद निवासी भी यन्त्रालय में नियुक्त थे। इस प्रकार ६। ७ वर्ष व्यतीत होने पर कतिपय आर्य्य भद्र-पुरुषों की एक "आर्य्य धर्मसभा" नाम की सभा स्थापित हुई कि जिसका प्रधान उद्देश्य यह था कि आर्य्यसमाज के मन्तव्यों पर किये आक्षेपों का उत्तमता के साथ युक्ति और प्रमाणों से उत्तर दिया जाय तथा आर्य्य-समाज के सिद्धान्तों पर होनेवाली शङ्काओं का सम्यक् प्रकार समाधान किया जाय अतएव इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त आर्य्य धर्म-सभा की ओर से "आर्य्य सिद्धान्त" नामक एक मासिक पत्र निकाला गया जिसके प्रधान सम्पादक मान्यवर स्वर्गवासी पं० ज्वालादत्त जी व मान्यवर पं० भीमसेनजी नियत हुये तथा, यथासमय कुछ लेख स्वर्गवासी पं० बलदेव प्रसाद जी कायमगंज ज़िला फर्रुखाबाद निवासी के भी छपते रहे परन्तु कुछ काल के पश्चात् उक्त सभा यथावत् न चली अतएव आर्य्य सिद्धान्त का सर्व भार मान्यवर पण्डित भीमसेन शर्माजी ने स्वीकार किया, इस कारण आर्य्य सिद्धान्त पत्र के स्वामी व सम्पादक मान्यवर पं० भीमसेनजी को ही समझना चाहिये—अस्तु। प्रयोजन यह कि मान्यवर पण्डित जी जब सनातनी कलेवर से विभिन्न आर्य्यसामाजिक थे तब आर्य्यसामाजिक सिद्धान्तों की पुष्टि के निमित्त आर्य्य

सिद्धान्त मासिक पत्र निकालते थे; उस आर्य्य सिद्धान्त के मुख पत्र (टाइटिल पेज) पर निम्न लिखित पंक्तियां वा लेख पण्डित जी की ओर से छपता था—

सनातनं वेदपथं सुमंडय दवक्तिनं तद्विमुखं च खंडयत्। विद्वेषिणो दस्युतरांश्च धर्षयत् समृद्ध्यतात् पत्रमिदंप्रगर्जयत्॥

अर्थः—सनातन वेद पथ का सम्यक् प्रकार मण्डन और तद्विरोधी नवीन मत का खण्डन करता हुआ तथा धर्म विद्वेषी दस्युजनों को धमकाता हुआ एवं गर्जता हुआ यह आर्य्य सिद्धान्त नामक पत्र समृद्धि को प्राप्त हो। पुनः इसके नीचे निम्न लिखित वाक्य मुद्रित होते थे:—

सनातन आर्यमत मंडन, नवीन पाखंडमत खंडन।
सत्सिद्धान्त प्रवर्त्तक, असत् सिद्धान्त निवर्त्तक।

इसके नीचे निम्नस्थ पंक्ति, जब तक आर्य्य सिद्धान्त निकला, बराबर छपती रही—

"श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के शिष्य भीमसेन शर्म्मा द्वारा सम्पादित होकर इत्यादि"

इस प्रकार १० वर्ष ३ मास तक आर्य्य सिद्धान्त का सम्पादन मान्यवर पं० भीमसेनजी ने किया और प्रबल प्रतिज्ञा के साथ आर्य्य समाज के मन्तव्यों का मण्डन एवं प्रचार तथा अब जिसको सनातन नाम से कह कर वैदिक कहने लगे उसका खण्डन करते रहे; यथा—आर्य्य सिद्धान्त के प्रथम भाग के प्रथम अङ्क से ही काशीस्थ विद्वानों की ओर

से लिखे हुये "महामोह विद्रावण" नामक पुस्तक की समालोचना प्रारम्भ की है। महामोह विद्रावण के आरम्भ में श्रीमत्स्वामि दयानन्द सरस्वती जी की निन्दा और उनके लिये कुत्सित वाक्य प्रयोग किये गये थे, उसका उत्तर मान्यवर पं० भीमसेन जी ने इस योग्यता और उत्तमता से दिया कि काशी के पण्डित भी मौनावलम्बन कर अस्त हो गये पुनः अद्यावधि उनको लेखनी उठाने का साहस न हुआ। आगे उस पुस्तक में वेद और ब्राह्मणों की एकता पर लेख लिखागया था जिसका खण्डन भी पण्डित जी ने पूर्ण विद्वत्ता से वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाण एवं अकाट्य युक्तियों से सम्यक् प्रकार किया है कि जिसका अब सनातन धर्मी होने पर वे पुनः खण्डन नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त सुयोग्य पण्डित जी ने महती योग्यता से अकाट्य युक्तियों और वेदादि सच्छास्त्रों के दृढ़ प्रमाणों से आर्य्य सिद्धान्त पत्र में निम्न लिखित विषयों का समावेश किया है; यथा—वैदिक सिद्धान्तों पर दोषारोपण करनेवाले धर्म दिवाकर आदि के पौराणिक मन्तव्यों का खण्डन, ब्रह्मसमाज के कुतर्कों का निराकरण, जिन में पौराणिक मत की शङ्का होती है ऐसे वेद मन्त्रों का विशद अर्थ, आर्य्य समाज के नियमों पर हुई शङ्काओं के उत्तर, रामानुजीय मत समीक्षा (खण्डन), मूर्ति पूजा विचार अर्थात् पाषाणादि प्रतिमार्चन खण्डन, अवतार समीक्षा अर्थात् ईश्वर के अवतार होने का भले प्रकार खण्डन, खटमल आदि क्षुद्र जन्तुओं के मारने न मारनेका विचार, जैनियों के अज्ञान तिमिर भास्कर का खण्डन रूप आस्तिक नास्तिक संवाद, गङ्गादि नदियों के तीर्थ और वेद में होने का सप्रमाण

खण्डन, जीवात्मादि विषयक प्रश्नोत्तर; श्राद्धविषयक अथर्व-वेद के मन्त्रों की व्याख्या करते हुये नवीन वेद विरुद्ध मृतक श्राद्ध का खण्डन, पादरी विलयम साहब के नियोग विषयक आक्षेपों का सामाधान, यजुर्वेद के ३० वें अध्याय पर विशेष विचार प्रायश्चित्त विवेचन, मुन्शी इन्द्रमणि कृत अनन्तत्व प्रकाश का खण्डन, ऋग्वेद के मण्डल १० सूक्त १० तथा १४ का आन्दोलन के साथ विशेष अर्थ, मांस भक्षण विषयक पुस्तकों और लेखों का प्रबल युक्ति और प्रमाणों से खण्डन, त्रयी विद्या का बृहद् व्याख्यान संस्कार और जाति विषयक उत्तम व्याख्यान साम्भुसिंह के बनाये सत्यार्थ विवेक का सप्रमाण मुंहतोड़ उत्तर, आर्य्यसमाज का भावी कर्त्तव्य, ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण व्याख्यान, पाखण्डमत कुठार का खण्डन, कन्नौज निवासी पं० हरिशङ्कर शास्त्री के बनाये सद्धर्म-दूषणोद्धार का खण्डन, पुनर्जन्म का दृढ़ युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध करना, पं० जमुनादास कृत भहताव दिवाकर का खण्डन तथा अनेक मासिक पत्र और विपक्षियों के आर्य्य समाज के सिद्धान्तों पर किये हुये कुतर्कों का अकाट्य युक्ति और प्रमाणों से विशेष आन्दोलन के साथ खण्डन किया है; साथ ही आर्य्य समाज के मन्तव्यों के पोषण में अनेक उपयोगी लेख आर्य्य सिद्धान्त में प्रकाशित किये जिनका हम स्थाना-भाव से उल्लेख नहीं कर सकते; आशा है कि हमारे अनुग्राहक पाठक गण इतने ही भाव, ज्ञात कर क्षमा करेंगे। पाठकगण! आर्य्यसिद्धान्त मासिक पत्र में ऊपर लिखे हुये विषयों पर लेख लिखने के अतिरिक्त माननीय प्रशंसित पण्डितजी ने आर्य्य सामाजिक जीवन में रहते हुये निम्न लिखित उत्तमोत्तम पुस्तकों के टीका व नवीन पुस्तक बनाये।

उपनिषद्भाष्य :—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय और श्वेताश्वर इन नौ उपनिषदों पर संस्कृत और भाषा में उत्तम टीका पदार्थ भावार्थ सहित किया और अतीव गंभीर विचार एवं आन्दोलन के साथ अद्वैतवाद अर्थात् श्रीमत्स्वामि शङ्कराचार्य्यजी अनुमोदित "अहं ब्रह्मास्मि सर्वंखल्विदं ब्रह्म इत्यादि" नवीन वेदान्त के पक्ष और उनके गुरु जी श्रीगौडपादाचार्य्य जी की कारिकाओं का प्रबल युक्ति और प्रमाणों से निराकरण किया है। विशेष बात इनमें भी यह है कि प्रत्येक उपनिषद् के टाइटिल पेज पर "श्री १०८ स्वामि दयानन्द सरस्वती के शिष्य भीमसेन शर्म्मा कृत" यह मान्य-वर पण्डितजी ने बराबर छापा है, इत्यादि।

मनुभाष्य भूमिका :—मनुस्मृति भाष्य के पूर्व माननीय पण्डितजी ने यह "मनु-भाष्य भूमिका" बृहद् आकार छापी थी। प्रथम १५०० छापी और मूल्य १।।) रुपया रक्खा। इसमें मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोकों की सम्यक् समालोचना की तथा प्रबल युक्ति प्रमाणों से मृतक श्राद्ध खण्डन कर प्रक्षिप्त बत-लाया। मांस खाने का खण्डन किया, साथ नियोग की विधि का उत्तमता से मण्डन किया इत्यादि :—

मनुस्मृति भाष्य :—सात अध्याय मनुस्मृति का, संस्कृत और भाषा में पदार्थ भावार्थ सहित, विशेष आन्दोलन के साथ किया, इसके पश्चात् पं० जी ने कायाकल्प किया अतएव भाष्य अपूर्ण ही रह गया।

भगवद्गीता भाष्य :—सुयोग्य पण्डित जी ने संस्कृत व भाषा में पदार्थ भावार्थसहित प्रक्षिप्त श्लोक और अध्यायों का सम्यक् प्रकार सप्रमाण समालोचना करते हुये महात्मा

श्रीकृष्ण जी की प्रशंसा पर कई श्लोकों व अध्यायों को वैष्णवों के पश्चात् मिलाये बताकर अपने भाष्य में उन श्लोकों और अध्यायों को निकाल दिया है इत्यादि।

इन ऊपर लिखे बड़े पुस्तकों के अतिरिक्त सुयोग्य पण्डित जी ने निम्नलिखित पुस्तक आर्य्यसामाजिक काल में अपनी लेखनी द्वारा लिखकर आर्य्यसमाज के मन्तव्यों का सम्यक् प्रकार मण्डन किया है यथा :—

यज्ञोपवीत शङ्का समाधि :—इसमें यज्ञोपवीत (जनेऊ) पर होने वाली सभी शङ्काओं का भले प्रकार समाधान किया है।

गङ्गादि तीर्थत्व विचार—इसमें गङ्गादि नदियों के तीर्थ और वेद में होने का खण्डन।

तीर्थ विचार—इसमें सभी पौराणिक तीर्थों का खण्डन किया है।

द्वैताद्वैत संवाद—इसमें नवीन वेदान्त अद्वैतवाद का खण्डन है।

खुर्जा शास्त्रार्थ :—इसमें मूर्त्तिपूजन पर शास्त्रार्थ हुआ है।

जीवसान्त विवेक—मुन्शी इन्द्रमणि मुरादाबादी का खण्डन।

सद्विचार निर्णय, पुनर्जन्म; पुत्रकामेष्टिपद्धति, सत्यार्थ विवेक-निरीक्षण, मांस भोजन विचार–(इसके तीन भाग लिख कर मासखाने का खण्डन किया है) इत्यादि पुस्तकें लिखकर आर्य्य समाज के मन्तव्यों का यथा शक्ति प्रचार किया

इस प्रकार आर्य्य सिद्धान्त पत्र द्वारा व ऊपर लिखे पुस्तकों द्वारा आर्य्य समाज के प्रत्येक मन्तव्य का पोषण व प्रचार करते हुये पं० जी ने सन् १८९९ ई० तक अपना जीवन आर्य्य-समाज में रहते हुये व्यतीत किया; यद्यपि मध्य में एक बार पं० जी ने आर्य्यसिद्धान्त के सातवें भाग में गायत्री मन्त्र के पढ़ने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है ऐसा संशयापन्न एक निबन्ध लिखा था परन्तु आर्य्या-वर्त्त साप्ताहिक पत्र रांची से प्रकाशित होनेवाले के प्रतिवाद करने पर उसी समय सातवें भाग में "मन्त्र भेद विचार" नामक लेख द्वारा समाधान कर सावधान हो गये थे।

इटावे के अग्निष्टोम यज्ञ में पं० भीमसेनजी का आत्मबलिदान।

अर्थात्

मान्यवर पं० भीमसेन जी का अधःपतन

सहृदय विचारशील पाठक गण! पूर्व इसके हम अग्नि-ष्टोम यज्ञ का बलिदान आपकी सेवा में निवेदन करें इसका वर्णन कर देना परमावश्यक समझते हैं कि अग्निष्टोम का मूलाङ्कुर स्थापित कैसे और क्यों हुआ? विदित हो कि मान्यवर पं० भीमसेन जी का सरस्वती यन्त्रालय जब प्रयाग में स्थित था और मान्यवर पं० तुलसी राम जी स्वामी उक्त यन्त्रालय के, पण्डित जी की ओर से, प्रबन्धकर्त्ता थे तब श्रीमान् सेठ माधोप्रसाद जी खेमकाचूरू निवासी ने प्रयाग में आकर प्रशंसित पण्डित भीमसेन जी से पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराने के निमित्त अनुरोध किया। इस पर पण्डित जी ने उक्त

यज्ञ कराना स्वीकार कर मा० पण्डित तुलसीराम के सहित उक्त सेठ जी की इच्छानुसार प्रयाग में ही पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। उसी समय उस यज्ञ के निमित्त "पुत्र कामेष्टि पद्धति" पण्डित भीमसेन जी ने सर्वथा आर्य्यसमाज के मन्तव्यों के अनुकूल बनाई और इसी प्रक्रिया से यज्ञ कराया गया तथा च उसी समय सरस्वती यन्त्रालय में "पुत्र कामेष्टि पद्धति" मुद्रित हुई। कुछ काल पश्चात् उक्त सेठ जी का अभीष्ट सिद्ध हुआ अर्थात् सेठ जी के पुत्र उत्पन्न हुआ और पुत्रजन्मोत्सव के उपलक्ष में कुछ रुपया यज्ञ के निमित्त सङ्कल्प किया। बस, उसी सङ्कल्पित रुपये से इटावे में अग्निष्टोम यज्ञ पण्डित भीमसेन जी ने कराया जिसमें पूर्णाहुति करते हुये अपनी आहुति भी दे डाली।

यज्ञ विषयक आन्दोलन।

पुत्रेष्टि यज्ञ होने के पश्चात् कुछ काल तक सरस्वती यन्त्रालय व पण्डित भीमसेन जी इलाहाबाद में रहे तदनन्तर मास फर्वरी सन् १८९६ ई० में सरस्वती यन्त्रालय प्रयाग से उठ कर इटावा में आगया। कुछ काल पश्चात् मा० पण्डित तुलसी स्वामी ने यन्त्रालय से नौकरी छोड़ कर मेरठ में जाकर स्वकीय स्वामी यन्त्रालय खोल स्वतन्त्र कार्य्य करने लगे। इधर पण्डित भीमसेन जी ने सन् १८९८ ई० के आर्य्य-सिद्धान्ध मासिक पत्र के नवें भाग में यज्ञ विषयक आन्दोलन प्रारम्भ किया तथा स्वर्गवासी माननीय पं० ज्वालादत्त जी फ़र्रुख़ाबाद निवासी की विशेष सहायता से "दर्श पौर्णमासेष्टि स्मार्त्तकर्म इष्टि संग्रह" आदि याज्ञिक पद्धति

भी बनाई । आर्य्य सिद्धान्त के नवें भाग में जहां यज्ञ सम्बन्धी विचार लिखने आरम्भ किये थे वहां यज्ञ में पशु-हिंसा निषेधक एक अत्यन्त गम्भीर भावपूर्ण लेख लिख कर सिद्ध किया कि यज्ञ में पशु हिंसा कदापि कर्त्तव्य कर्म नहीं तथा च इसी भाग में यज्ञ परिभाषा सूत्रों का भाषा टीका छापना भी प्रारम्भ किया; पुनः पण्डितजी ने सन् १८९९ ई० के आर्य्य सिद्धान्त भाग १० के मई व जून के अङ्क ५ व ६ में "वैदिकधर्म" नामक एक निबन्ध लिखते हुये लिखा कि :--

"यद्यपि स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज ने वेद शास्त्रों की ओर हमारा मुख फेरने के लिये वा हमको वेद-पथ पर चलाने के लिये पूर्ण उद्योग शक्तिभर किया, पर हम भी ऐसी गाढ़ निद्रा में सोये हुये हैं जो अनेक बार जगाने पर भी नहीं जगते" इत्यादि स्वामीजी के विषय में लिख कर इस लेख के अन्त में "दर्शपौर्णमास पद्धति" का उल्लेख किया कि यह पद्धति वैदिक धर्मानुकूल बनी है। इस प्रकार इस अङ्क के टाइटिल के अन्तिम पृष्ठ पर भावी अग्निष्टोम यज्ञ के निमित्त कार्य्यकर्त्ताओं के लिये विज्ञापन देकर पौष मास में यज्ञ होने की सूचना छापी।

मान्यवर पं० भीमसेनजी के कायाकल्प का आरम्भ

आर्य्यसिद्धान्त भाग १० के अङ्क ५। ६ के पश्चात् तीन मास के अङ्क ७।८।९ एक साथ छाप कर निकाले गये क्योंकि यह तीनों अङ्क ठीक एक वर्ष पश्चात् अग्निष्टोम यज्ञ पौष में हो जाने के पश्चात् जब पंडितजी पिण्ड दानादि व मेष मेषी का होम करा चुके इसके विवाद के अनन्तर छापे गये। उनमें सबसे पहिला

लेख "आस्तिक लोगों का सिद्धान्त व मन्तव्य" नामक प्रकाशित किया। इस लेख में आप्तोपदिष्ट शब्द प्रमाण को प्रमाणान्तर से सिद्ध हुये बिना भी ब्रह्माक्षर तथा पत्थर की लीक के तुल्य सर्वथा सर्वदा सत्य अमिट माननेवाले को आस्तिक माना वा आस्तिकों का सिद्धान्त माना अर्थात् शब्द प्रमाण से यज्ञादि कर्मकांड को आप्तोपदिष्ट मान कर उसको बिना तर्क व प्रत्यक्षादि प्रमाणों से प्रमाणित किये मानना चाहिये—यह सारांश उक्त लेख का है अर्थात् श्राद्ध में पिंड दानादि सभी कर्म जो आर्य्यसमाज के मन्तव्यों के सर्वथा विपरीत हैं उन सबको शब्द प्रमाणान्तरगत मान, कर्त्तव्य कर्म मानते हुये करना परमावश्यक है।

इस लेख के पश्चात् द्वितीय लेख "स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का सिद्धान्त" इस नाम से लिखा गया है जिसमें संक्षेपतः श्री स्वामीजी के सिद्धान्त को दिखाते हुये पृष्ठ १७ में श्रीस्वामीजी का सिद्धान्त लिखा है कि "स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में अपना मन्तव्य ५१ भागों में विभक्त करके संक्षेप से लिखा है तथा आर्योपदेश्य रत्नमाला में भी इसी प्रकार का विचार लिखा है और वैसे तो जो कुछ पुस्तक उन्होंने लिखे, बनाये हैं उनका जो सारांश निकलता है वही उनका मन्तव्य व सिद्धान्त है। ५१ व न्यूनाधिक अनेक भागों में सिद्धान्त कहना यद्यपि बहुत फैला कर लिखे ग्रन्थ रूप लेख की अपेक्षा सिद्धान्त है तथापि उन बहुत भागों का सिद्धान्त जो एक में आ सकता है उसकी अपेक्षा बहुत भागों में कहना भी व्याख्यान है और वह मूल सिद्धान्त स्वामीजी के सब ग्रन्थ, सब उपदेश तथा आर्य्यसमाज के नियमों पर

दृष्टि डालने से यह मिलता है कि "मूल मन्त्र भाग रूप वेद सर्वथा निर्भ्रान्त माननीय है और उस मूल वेद के अनुकूल ब्राह्मणादि व्याख्यान आर्षग्रन्थ अङ्ग उपाङ्ग मान्य हैं। यदि मूलवेद से जिस अंश में विरुद्ध हों तो सभी ब्राह्मणादि त्याज्य हैं"। इस एक मूल सिद्धान्त से यह भी आजाता है कि ईश्वर और जीवादि सभी मान्य पदार्थों को वैसाही निर्विकल्प ठीक मानना चाहिये जैसा कि मूलवेद के अभिप्राय से उनका स्वरूपादि सिद्ध हो तथा यह भी सिद्ध ही है कि मूलवेद का अर्थ वा आशय जानने के लिये वेदाङ्ग वा ब्राह्मणादि वेद के व्याख्यान ग्रन्थों को जानना, पढ़ना चाहिये और उनकी सहायता लेनी चाहिये। मैं आशा करता हूँ कि स्वामीजी के इस मूल सिद्धान्त में किसी महाशय को किञ्चित् भी विवाद वा अरुचि न होगी किन्तु जैसा मैं समझा हूँ—निश्चय है कि सभी लोग वैसाही समझते और मानते होंगे। हमारा विश्वास है कि स्वामी जी वेद को प्रधान मानते थे और उसके सामने अपने विचार वा इच्छा को गौण मानते थे इस लिये उनका वही पूर्व लिखित मुख्य सिद्धान्त है। श्री स्वामी जी ने समयानुकूल अपना काम ठीक किया: अंग्रेज़ी, फ़ारसी पढ़ते २ जिनके अन्त:करणों में उन भाषाओं सम्बन्धी तथा विदेशियों की शिक्षा प्रणाली का वैदिकी मर्यादा वा परिपाटी से विरुद्ध गन्ध बहुत बढ़ गया था इसलिये स्वामी जी ने प्रथम कर्त्तव्य यही समझा कि इन लोगों को पौराणिक ऊटपटाङ्ग बातों के अधिक फैलाव से तथा विदेशी भाषाओं की शिक्षा प्रणाली से जो वेद के नाम से घृणा व अरुचि हुई है उसको हटाना और वेद का नाम प्रतिष्ठा के साथ लेना प्रथम यही आरम्भ किया; इसी लिये

वेद की मर्यादा वा शैली से प्रतिकूल पौराणिक मूर्ति पूजादि का खण्डन किया। स्वामी जी यदि मान लेते कि हमने जितना लेख वा उपदेश कर दिया वही वैदिकमत है; आगे इनको और कुछ वेद विषय में जानना, मानना वा करना आवश्यक नहीं है तो वेद वेदाङ्गों के पठन पाठन में वैसा बल कदापि नहीं देते। स्वामी जी सब वेदाशय को निर्भ्रान्त मानते थे। वेद भाष्यादि में यज्ञादि मुख्य विषय पर अर्थ नहीं किया; इसका तो स्पष्ट यही प्रयोजन है कि हम लोग यज्ञादि समझने वा करने कराने योग्य नहीं थे किन्तु हमारे लिये वेदोक्त जैसे औषध की उस काल में आवश्यकता थी वही चिकित्सा उन्हों ने की और इन बहुत विचारों के लिखने से हमें क्या प्रयोजन, जब स्वामी जी का मूल सिद्धान्त यह स्थिर हो गया कि "मूल वेद स्वतः प्रमाण और अन्य ब्राह्मणादि वेद के अनुकूल होने से प्रमाण तथा विरुद्ध होने से परित्याज्य हैं"। इसी मूल सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल सिद्ध है कि वैदिक सम्प्रदाय वा वैदिक धर्म यज्ञ है तब हम को कोई भी विकल्प नहीं होना चाहिये। केवल इतना विचार हमको करना चाहिये कि स्वामी जी का जो कोई लेख वा उपदेश इससे विरुद्ध दीख पड़े उस को मूल सिद्धान्त से मिलाने की चेष्टा हम करते रहें। स्वामी जी के उपदेशों तथा विचारों की संगति वा व्यवस्था लगाना विरोध दीख पड़े; उसका समाधान करना यह हमारा कर्त्तव्य ही होना चाहिये। परन्तु यह निश्चय रखिये कि जब तक हम लोग मूल सिद्धान्त को बड़ी दृढ़ता के साथ जानने, मानने वा पकड़ने को तत्पर न होंगे तब तक हमारी स्थिर दशा कदापि नहीं होसकती।

यह बात सर्वसम्मत है कि वेद विरुद्ध त्याज्य है वा यों कहो कि वेदानुकूल का ही नाम धर्म है और जो वेद विरुद्ध वह धर्म ही नहीं—इसीलिए त्याज्य है।

स्वामी जी के माने व बताये हुये मूल सिद्धान्त में हम लोगों में से किसी को भी कुछ विकल्प नहीं किन्तु उसको सभी निर्भ्रान्त मानते हैं किन्तु उस मूल सिद्धान्त का व्याख्यान करने वा आशय समझने में भेद पड़ता है। इस भेद को यदि हम लोग परस्पर मिल, हठ दुराग्रह छोड़ के मिलाना चाहें तो इसका मिटाना सहज है।

बिना सोचे विचारे झटपट यह कह देना कि यह वेद विरुद्ध है, यह उचित नहीं जब तक कि साक्षात् वेद में स्पष्ट विरोध प्राप्त न हो—जैसे शैव वैष्णवादि की मूर्त्ति पूजा, उनके त्रिपुण्ड ऊर्ध्वपुण्ड धारणादि काम वेद में सर्वथा ही नहीं वा यह वैदिक सम्प्रदाय नहीं, वेदोक्त नहीं—यह तो साक्षात् कह सकते हैं। पर इन मूर्त्ति पूजादि कर्मों के प्रचार से वैदिक कर्मों को बाधा पहुंची। वैष्णवादि मूर्त्ति-पूजक सैकड़ों सहस्रों में से एक भी जब अग्निहोत्रादिक वैदिक कर्म नहीं करते तथा जो कोई कोई अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म करते हैं वे वैष्णवादि की मूर्त्ति पूजा वैसी नहीं करते वा कर पाते इस कारण मूर्त्तिपूजादि पौराणिक कर्मों को भी वेद विरुद्ध कह सकते हैं। स्वामी जी महाराज का भी यही सिद्धान्त था और है कि वैदिक सम्प्रदाय से जिसका कुछ मेल वा सम्बन्ध नहीं, वेद वा ब्राह्मणादि वैदिक ग्रन्थों में जिसका मूल भी नहीं और धर्म के नाम से कर्त्तव्य ठहराया गया इसीलिए मूर्त्तिपूजादि कर्म वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म

की अपेक्षा निकृष्ट और त्याज्य है। इसीलिये यही ठीक है कि वैदिक सम्प्रदाय श्रौतस्मार्त से जिसकी परिपाटी विरुद्ध न हो, आर्ष प्रचीन ग्रन्थों में जिसका साक्षात् वर्णन हो वह कर्म वेदानुकूल है और आधुनिक पौराणिक मूर्त्तिपूजादि वैदिक कर्मों के प्रचार का बाधक होने से वेद विरुद्ध है–यही स्वामी जी का सिद्धान्त है।

यज्ञ विषय में स्वामी जी का मन्तव्य थोड़ा सा लिखते हैं: ऋग्वेद भाष्य भूमिका के प्रतिज्ञा विषय के आरम्भ में स्वामी जी ने लिखा है कि:—

"परन्त्वेतैर्वेदमन्त्रैः कर्मकाण्डविनियोजितैर्यत्रयत्राग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत्कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते कुतः कर्म काण्डानुष्ठानस्यैतरेयशतपथब्राह्मण पूर्व मीमांसा श्रौत सूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात्। पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रन्थवत्पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तेश्चेति । तस्माद्युक्ति सिद्धो वेदादि प्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतस्तदुक्तोपि विनियोगो ग्रहीतुं योग्योऽस्ति ॥

भा०:—इस वेद भाष्य में शब्द और उनके अर्थ द्वारा कर्मकाण्ड का वर्णन करेंगे परन्तु लोगों के कर्मकाण्ड में लगाये हुए वेद मन्त्रों से जहाँ जहाँ जो जो कर्म अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्य्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जायगा क्योंकि उनके अनुष्ठान का यथार्थ विनियोग ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण पूर्ण मीमांसा श्रौत सूत्र और गृह्य सूत्रादिकों में कहा हुआ है। उसी को फिर कहने से पिसे को पीसने के तुल्य अल्पज्ञ पुरुषों के लेख के समान दोष इस भाष्य में भी आ सकता है। इसलिये जो जो कर्म-

काण्ड वेदानुकूल युक्ति प्रमाणादि सिद्ध है उसी को मानना योग्य है, अयुक्त को नहीं।

यह ऊपर लिखा संस्कृत और भाषा, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका से ज्यों का त्यों उद्धृत किया है। इस ऊपर के लेख में जो स्वामीजी ने लिखा है कि "जो जो कर्म काण्ड वेदानुकूल युक्ति प्रमाण सिद्ध है उसीको मानना योग्य है, अयुक्त को नहीं" इसका प्रयोजन यह है कि पौराणिक लोगों ने पुराणादि तथा तन्त्रादि ग्रन्थों से अनेक अंश गणेश पूजन, गौरी पूजन, अङ्गन्यास, करन्यासादि वैदिक कर्म काण्ड की पद्धतियों में मिला दिया है। और वैसाही बहुत काल से वे लोग करते कराते भी हैं; जैसे यज्ञोपवीतादि की पद्धतियां पारस्कर आश्वलायनादि गृह्यसूत्रों से बनी और बनती हैं। उन सूत्रों में कहीं नाममात्र भी गणेशपूजनादि नहीं लिखा अस्तु विवाह यज्ञोपवीतादि की प्रचरित पद्धतियों में गणेशपूजनादि लिख वा छपा दिया है। वैसे वेद ब्राह्मण और श्रौतसूत्रों में जिसका लेशमात्र भी नहीं ऐसा भूमि पूजन, गणेशपूजनादि अनेक पौराणिक कर्म यज्ञ की पद्धतियों में मिलाया है और उसको भी करते कराते हैं। उस गणेशपूजनादि का योग नाम मेल वेद और ब्राह्मणों में नहीं इसीलिये वह वेदानुकूल नहीं किन्तु अयुक्त है। ऐसे पौराणिक कर्मों के छुड़ाने के लिये ही लिखा है कि युक्ति प्रमाण सिद्ध को मानो, अयुक्त को नहीं।

पाठक महाशयो! ऊपर लिखे अनुसार आप को यह भी ज्ञात हो गया होगा कि स्वामी जी यज्ञ को मानते थे और यज्ञों का पद्धति ग्रन्थ उन्हों ने कोई बनाया नहीं किन्तु "उन के अनुष्ठान का यथार्थ विनियोग ऐतरेय ब्राह्मणादि में कहा

हुआ है," इस कथन से सिद्ध है कि स्वामी जी ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखे कर्म विनियोग को यथार्थ बतलाते हैं।

प्रयोजन यह है कि स्वामी जी का सिद्धान्त ठीक है। उन्होंने ने यज्ञ को वैसा ही ठीक २ माना है जैसा कि मानना चाहिये पर अब जो लोग विधिहीन साधारण होम को यज्ञ मानते हैं, वे स्वामी जी के सिद्धान्त से अवश्य ही विरुद्ध हैं इत्यादि :—

पण्डित जी के उपर्युक्त लेख में पाठकों को ध्यान देने योग्य विचार

मान्यवर पं० भीमसेन जी के आर्य्य सिद्धान्त भा० १० अङ्क ७-८-६ के दो लेखों का सार हमने ऊपर पाठकों के दर्शनार्थ लिख दिया। अब केवल विचार यह है कि पण्डित जी ने श्री स्वामी जी के विषय में यह स्पष्ट स्वीकार किया कि स्वामीजी निर्भ्रान्त वेद को स्वतः प्रमाण और वेद से भिन्न ब्राह्मणादि ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानते थे, यह स्वामी जी का सिद्धान्त ठीक है, स्वामी जी ने यज्ञ को वैसा ही ठीक २ माना है कि जैसा मानना चाहिये. साथ ही इसके यह भी बड़े प्रबल दावा के साथ लिखा है कि गणेश गौरी पूजन, भूमि पूजन, अङ्गन्यास करन्यास आदि पौराणिक कर्म सर्वथा वेद विरुद्ध अधर्म एवं त्याज्य हैं अस्तु, रहा यह कि शब्द प्रमाण को ब्रह्माक्षर व पत्थर की लीक के समान मानना चाहिये ये पं० जी का लेख स्पष्ट बतला रहा है कि पं० जी इसी टट्टी की आड़ में तो शिकारी बनना चाहते थे परन्तु वह सुअवसर प्राप्त न हुआ। बस इसीलिये पं० जी का अधःपतन हुआ

क्योंकि ऋषि दयानन्द सरस्वतीजी ने जब स्वयम् अपने ग्रन्थों में शब्द प्रमाण को माननीय माना तब पं० जी ने क्यों परिश्रम किया, वह इसलिये कि जहां स्वामीजी ने शब्द प्रमाण माना वहां न्याय दर्शन के " आप्तोपदेशः शब्दः" इस सूत्र के प्रमाण से यह भी माना कि शब्द प्रमाण वही मान्य है कि जो आप्त का कथन हो परन्तु जो कथन किसी आप्त विद्वान् का तो नहो और किसी स्वार्थी वेदविरोधी ने आप्तोपदिष्ट में मिलाया हो कि जिसका साक्षात् वेद से विरोध हो वह कथन कदापि शब्द प्रमाण नहीं हो सकता और इसी लिये वह मान्य नहीं हो सकता परन्तु पण्डित जी, "बाबा वाक्यं प्रमाणं" के अनुसार, जिस पुस्तक पर ऋषियों का नाम हो, चाहे उस के भीतर इन्जील या कुरान के ही गीत भले गाये गये हों आंखे मीच कर उसका मानलेना विश्वास कर लेना शब्द प्रमाण का भाव मानते हैं। इसीलिये आ० सि० भाग० १० के ७। ८।९ अङ्कों में आस्तिक लोगों का सिद्धान्त नामक लेख लिखने का परिश्रम उठाया। परन्तु आर्यसमाज वा श्रीस्वामीजी का यह मन्तव्य कदापि नहीं वा न अन्य किसी ऋषि काही इस प्रकार का मन्तव्य है कि बिना इस बात की परीक्षा किये कि यह कथन आप्त का है वा नहीं—शब्द प्रमाण मान लिया जाय। परन्तु पं० जी को तो यही दूर की सूझी थी इसीलिये प्रथम से ही उसकी सामिग्री एकत्रित की यथा उसका भाण्डा आगे चलकर फूट गया सो किसी से छिपा नहीं। अर्थात् आगे चलकर सन् १९०१ ई० के फर्वरी मास में जब आर्य्यसमाज आगरा के साथ पण्डित भीमसेनजी ने शास्त्रार्थ किया, उस में शब्द प्रमाण के बल पर ही लकीर के फकीर हो, कात्यायन श्रौत

सूत्र में लिखे निम्न सूत्र जो किसी वाममार्गी अनाचारी ने मिला कर कात्यायन व वेद के नाम को कलङ्कित करने का उद्योग किया, उनका भी शब्द प्रमाण के अन्तर्गत मानकर वेदानुकूल कह वा लिख बैठे ; यथाः—वावकीर्णिनो गर्दभेज्या १।१।१३। भूमौ पशुपुरोडाशश्रपणम् १।१।१४। अप्स्ववदान होमः।१।१।१६। अवदानानांहृदय जिह्वा क्रोडादीनां होमोप्सु उदकेषु भवति नाग्नौ। वचनात्। शिश्नात्प्राशित्रावदानम्।१।१।१७।

अर्थः—अथवा अवकीर्णी ब्रह्मचारी गधे से यज्ञ करे। १३॥ भूमि में गधे के मास का पुरोडास पकावे॥ १४। पानी में उसके हृदय, जीभ, पसली आदि का होम करे; अग्नि में नहीं। वचन से॥ गधे के उपस्थेन्द्रियसे प्राशित्रावदान बनावे।

पाठकगण! माननीय पण्डित भीमसेनजी ने उस गर्दभेज्या को शब्द प्रमाण मानते हुये स्पष्ट लिखा है किः—

"कात्यायन वचनानां वेदानुकूलतयाऽस्त्येव प्रामाण्यम्। नचगर्दभेज्यादयो वेदाद्विरुद्धाः। अपितु वेदानुकूला एव॥

अर्थात्—कात्यायन के वचनों की वेदानुकूल होने से प्रामाणिकता है ही। और गर्दभेज्यादि यज्ञ वेद विरुद्ध नहीं हैं किन्तु वेदानुकूल हैं। इससे आगेचलकर पण्डितजी ने पुनः निम्न लिखित वाक्य बड़े दावे से लिखे हैं किः—

"आश्वलायनादिसूत्रेषुश्राद्धप्रकरणस्थं मांसं वेदानुकूलं न विरुद्धं वेदे मांसप्रतिपादनस्यदृष्टत्वात। शूलगवादयो यज्ञा वेदानुकूला एव।

अर्थात् श्राद्ध प्रकरण में आश्वलायनादि सूत्रों में कहा मांस वेदानुकूल है, विरुद्ध नहीं। क्योंकि वेद में मांस का प्रतिपादन देखा जाता है। शूल गवादि (गोहिंसा युक्त) यज्ञ भी वेदानुकूल हैं इत्यादि।

पाठक गण! ऊपर लिखे पण्डितजी के वाक्यों पर विचार करें कि पण्डितजी ने "आस्तिकों के सिद्धान्तवाला लेख लिख कर क्या आस्तिकत्व का भाव यही समझा कि गदहा का जल में होम करना, श्राद्ध में मांस खाना, गोहिंसा-युक्त यज्ञ करना, वेदों में मांस का प्रतिपादन बताना वस्तुतः बात तो यही थी वैसे तो आप्तोदिष्ट को शब्द प्रमाण श्री स्वामीजी ने माना ही था और आर्य्यसमाज का प्रत्येक सभासद् मानता ही है परन्तु पण्डितजी की तरह वेद विरोधी, स्वार्थी, अनाचारीजनों के पीछे मिलाये वाक्यों को आखें मीच अन्धे की भांति वा लकीर का फकीर हो नहीं मानता और न मेरे विचार से वेद-मतानुयायी कहनेवाले पण्डितजी व उनके अनुयायियों को मानना चाहिये और इसीलिये ऋषि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में कि जिसको स्वयं प्रशंसा करते हुये पण्डितजी ने भी स्वीकार किया है स्पष्ट लिख दिया है कि :—

"तस्माद्युक्ति सिद्धो वेदादि प्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगोग्रहीतुं योग्योऽस्ति"

अर्थात्—"इसलिये जो जो कर्मकाण्ड वेदानुकूल युक्ति प्रमाणादि से सिद्ध मन्त्रार्थ से निकला हुआ है उसी को मानना योग्य है, अयुक्त को नहीं। भला, क्या मनघड़न्त गर्दभेज्यादि

व शूलगवादि व वेदों में मास का प्रतिपादन, ये कदापि वेदों में हो सकता है? नहीं। और इसी लिये न पण्डित भीमसेनजी व कोई अन्य अनेक जन्मों में भी मूल वेदों से इस प्रकार के यज्ञादि का विधान दिखा सकता है न दिखा सकेगा। इसका सबसे बढ़ कर पुष्ट प्रमाण यही है कि जब तक हमारे माननीय पं० भीमसेनजी को पक्षपात वा स्वार्थ ने नहीं दबाया और मूल का वेद पर ही पूर्ण विश्वास था तथा आर्य्यसमाज के अनुयायी थे तब तक इसी यज्ञ में कि जो इटावे में सेठ माधवप्रसाद का कराया था इसके पूर्व जब यज्ञ को तैयारी कर रहे थे वा दर्श-पौर्णमासादि पद्धति लिखी जा रही थी तब आर्य्यसिद्धान्त के नवें भाग में यज्ञ में पशु-हिंसा कदापि कर्त्तव्य कर्म नहीं; इसकी पुष्टि में एक विस्तृत निबन्ध लिखा था। परन्तु ज्योंही आर्य्यसमाज से डिगे त्योंही वेदों में मांस की व गोमेध यज्ञ की मृगतृष्णा ने पण्डितजी की आंखों में चकाचौंध कर दिया। क्या पण्डितजी ने आर्य्यसमाज में रहते हुये मांस भोजन विचार नामक जो तीन पुस्तक लिखकर आपने मांस का निषेध किया था वह सनातनधर्म में आते ही पुनर्जन्म में पूर्व जन्म की स्मृति न रहने की भांति सारी बातें भुलादीं, अस्तु।

अब हमारे पाठकगण इस सब लेख से अवश्य यह परिणाम निकाल सकेंगे कि पण्डित भीमसेनजी आर्य्य-समाज के विरोधी क्यों बने? बस उसका स्पष्ट भाव यह है कि पण्डितजी ने शब्द प्रमाण की ओट में प्रकृत अन्ध-परम्परायुक्त वेद विरुद्ध कर्त्तव्यों को वेदानुकूल कर्त्तव्य सिद्ध करने का उद्योग किया। इस उद्योग में पण्डितजी सफलीभूत न हुये, इस लिये आर्य्यसमाज के प्लेटफ़ार्म से आप को पृथक्

होना पड़ा। सबसे पूर्व मृतक श्राद्ध का पण्डितजी ने आश्रय लेकर वेदानुकूल सिद्ध करने का उद्योग आरम्भ किया और उस को श्रीस्वामीजी की लिखित ऋग्वेद भाष्य भूमिका से सिद्ध करने का उद्योग करते हुये पूर्व लिखित संस्कृत व भाषा के लेख को उद्धृत कर आर्य्यसिद्धान्त में लिखा कि स्वामीजी सब कर्मकाण्ड को शतपथादि के अनुकूल मानते हैं परन्तु क्या यह न्याय के सूत्र से कि "वक्तुरभिप्रायादर्थान्तर कल्पनावाक्छलम्" अर्थात् वक्ता के अभिप्राय से भिन्न २ अर्थ की कल्पना करना वाक्छल कहाता ?. है सो पण्डितजी ने वस्तुतः वाक्छल नहीं किया कि जो ऋग्वेद भाष्य भूमिका की संस्कृत वा भाषा से उद्धृत कर उसका भाव यह दिखाना चाहा कि स्वामीजी शतपथ ऐतरेयादि के सभी कर्मकाण्ड को वेदानुकूल मानते हैं मानों मृतकश्राद्ध को भी मानते हैं। जबकि स्वामीजी मृतकश्राद्ध का खण्डन स्पष्ट पृथक् कर चुके तो उसका भाव यह कैसे कि पिण्डदानादि कर्म को स्वामी जी मानते थे किन्तु उसका तो स्पष्ट भाव यह है कि जब स्वामी जी मृतकों के लिये पिण्डदानादि खण्डन कर चुके अतएव यह स्वामी जी का मन्तव्य कदापि नहीं हो सकता। यही नहीं किन्तु स्वयं पण्डित जी भी मृतक श्राद्ध को मनुभाष्य भूमिका व अनेक बार आर्य्यसिद्धान्त मासिकपत्र में युक्ति व प्रमाण विरुद्ध सिद्ध कर चुके थे। बस, पण्डित जी के विचलित विचार हमारे पाठक देखें और विचार करें कि पण्डितजी ने क्यों आर्य्यसमाज का विरोध किया? वास्तव में ये कर्मकाण्ड की तो आड़ दिखावे के लिये पकड़ी परन्तु भाव भीतरी तो कुछ और था जो पाठकों को अब विदित ही

है कि पं० जी पक्के १६ आने सनातनी पौराणिक बने उपस्थित हैं।

इस स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का सिद्धान्त लिखने के पश्चात् इन्हीं ७-८-९ अङ्कों में "प्रश्नोत्तराणि" नाम से एक लेख लिखा है जिसमें अपनी ओर से प्रश्न लिख कर उनका समाधान भी आपही लिखा है। उस समाधान में से कतिपय आवश्यक बातें पाठकों के समक्ष उद्धृत कर दृष्टि-गोचर कराते हैं। आशा है कि पाठकगण पण्डित जी के इस कृत्य को ध्यान पूर्वक विचारें।

पं० भीमसेन जी के अद्भुत रहस्य।

१—मैं पूर्व बहुत काल से स्वामी जी को दो प्रकार से गुरु मानता था वैसा अब तक भी मानता हूँ और आगे भी मानता रहूँगा—एक तो स्वामीजी अधिक लम्बे चौड़े और मोटे भारी थे, शरीर में गुरुत्व [बोझा] अधिक था इससे गुरु मानता हूं। पर मैं अन्तःकरण से भी उनको गुरु मानता हूँ कि वे गंभीर विचारशील परोपकार प्रिय-धर्मोपदेशक जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी थे। इस से गौरव नाम प्रतिष्ठा प्रशंसा करने योग्य थे ऐसा ही मैं भी मानता हूं। परन्तु लाक्षणिक गुरु वे मेरे न थे न मैं मानही सक्ता था और न वे मेरे आचार्य्य ही थे। हाँ, तीसरे प्रकार श्री स्वामीजी से १५-२० दिन कुछ मूलन्यायसूत्र पढ़े थे इस कारण उन को इस अंश में लाक्षीणक वा पारि-भाषिक गुरु भी मैं मानता हूं। पारिभाषिक साम्प्रदायिक अंशों में तो मैं विशेष कर स्वामीजी को गुरु नहीं मानता न पूर्व मानता था। स्वामी जी के बहुत से उपदेशों व शिक्षाओं को

मैंने माना तदनुसार वर्त्ताव किया इससे मैं उनका शिष्य यौगिकार्थ से हुआ। मैं धर्मानुकूल स्वामी जी का कृतज्ञ रहना चाहता और रहूंगा। यदि मैं उनका विरोधी बन के ईश्वरानन्दादि के समान कुवाक्य कहूं वा लिखूं तो अवश्य कृतघ्न दोष का भागी हो जाऊं। सो मेरा ऐसा होना कदापि सम्भव नहीं। यह ऊपर का लेख आ० सि० भा० १० अङ्क ७। ८। ६ के पृष्ठ ३१। ३२। ३३ का है: पुनः ३५ पृष्ठ में यह लिखा कि:—

"यद्यपि मैं पारिभाषिक वा साम्प्रदायिक कनफुका गुरु स्वामी जी को नहीं मानता पर तथापि मैं उनके मूलसिद्धान्त को सब आर्य्यों की अपेक्षा अधिक ठीक मानता हूं! मेरा उन से उपकार हुआ, मैंने उनकी शिक्षा मानी: इस यौगिकार्थ से मैं शिष्य हूं और वे मेरे आचार्य्य गुरु वा उपदेशकादि थे यह अवश्य ही दृढ़ता से मानता हूं।"

पुन: आ० सि० भा० १० अङ्क १०-११-१२ के पृष्ठ २५ में—मैं स्वामी जी को पूर्ववत् ठीक २ गुरु मानता हूं; इत्यादि।

पाठक गण! ऊपर लिखी पं० भीमसेन जी के अव्यवस्थित चित्त की बातें देख कर पं० भीमसेन के भाव वा विचार आप को अवश्य ज्ञात हो गये होंगे। प्रथम आपने लिखा कि हम सदा से स्वामीजी को दो प्रकार से गुरु मानते थे—एक, मोटे होने से, द्वितीय धर्मोपदेशक जितेन्द्रिय आदि के कारण अन्तः-करण से। फिर आगे लिखा कि तीसरे प्रकार लाक्षणिक न्याय-सूत्र पढ़ाने से, चौथे यौगिकार्थ से। फिर लिखा कि ठीक २ पूर्ववत् मानता हूं इत्यादि। कहिये, पण्डित जी क्या यह लेख लिखते समय कर्मकाण्ड के विनयोग में मग्न थे। आर्य्यसिद्धान्त

के टाइटिल पर "श्री १०८ स्वामि दयानन्द सरस्वती के शिष्य भीमसेन शर्मा" यहां किस अर्थ में शिष्य लिखते रहे: जब मोटे होना गुरु का भाव मानोगे तब शिष्य शब्द का प्रयोग क्यों वा किस अर्थ में होगा—फिर इसी प्रकार दूसरे में आपने लिखा कि मैं अन्तःकरण से भी मानता; तो क्या मोटे होने से वा तीसरे, चौथे प्रकार से–गुरु किससे मानते– क्योंकि अन्तःकरण से तो एक ही प्रकार का मानते हो फिर प्रथम प्रतिज्ञा कि मैं दो तरह का मानता हूँ, पर गिनाया तब चार प्रकार तक गिना गये: क्या पूर्वापर लिखे का भी विचार न रहा? ज्ञान होता है कि लिखते समय मन कर्मकाण्ड में था। फिर अन्त में लिखा कि मैं ठीक २ पूर्ववत् मानता हूँ, क्या बीच में पूर्ववत् नहीं मानते थे? वास्तव में बात तो यह है कि जैसा घबड़ाया हुआ पुरुष कोई बात कहता है तो अव्यवस्थित चित्त होने से उसकी कोई बात ठीक मुंह से नहीं निकलती: कहता कुछ निकलता कुछ है: ठीक वही दशा पण्डितजी की इस लेख के देखने से ज्ञात होती है। वास्तव में बात भी सत्य है कि गुरुनिन्दा व कृतघ्नतारूप महापाप ने पण्डितजी के अन्तःकरण में एक प्रकार की घब-राहट पैदा कर दी थी, इसी कारण पण्डितजी एक एक बात को तीन तीन बार और पहिले कुछ पीछे कुछ लिख गये; कहीं लिखा कि मैं पारिभाषिक गुरु नहीं मानता, फिर आगे लिखा कि पारिभाषिक भी मानता हूँ। फिर आप लखते हैं कि ईश्वरानन्दादि की तरह कुवाच्य कहूँ तो कृतघ्नता दोष भागी हो जाऊँ सो मैं कदापि नहीं कर सकता। अब पण्डितजी अन्तःकरण पर हाथ रखिये और कहिये कि आप ईश्वरानन्द

के भी गुरु नहीं हो गये ? क्या पण्डितजी आपको उस पत्र का स्मरण है जो स्वामीजी के नाम भेज कर लिखा था कि मेरे अपराध क्षमा कर चरण कमलों के दर्शन कराइये। आशा है कि आप अब अपनी कृतघ्नता का प्रायश्चित्त करेंगे।

सार बात

पाठकगण ! इस सम्पूर्ण लेख का अभिप्राय यह है कि मान्यवर पं० भीमसेनजी ने पौषमास संवत् १९५७ विक्रमीय में अग्निष्टोम यज्ञ कराया। उस यज्ञ में मृत पितर पितामहादि के निमित्त पिण्डदान कराया तथा आटा के मेष मेषी (मेढ़ा मीढ़ी) बना कर उनके ऊपर ऊन लपेट कर होम कराया। बस, यही दो कारण पण्डितजी के साथ आर्य्यसमाज के विवाद होने के हुये और इन्हीं दो कारणों से पण्डितजी को आर्य्यसमाज से पृथक् होना पड़ा और इन्हीं दो विषयों के सिद्ध करने के लिये ही आस्तिक लोगों का सिद्धान्त व मंतव्य लिख कर परिश्रम किया। यद्यपि मान्यवर पण्डितजी ने अपने लेखों में जो आर्य्यसिद्धान्त में लिखे उनमें प्रथम यही प्रकट किया कि आर्य्यसमाज में वैदिक कर्मकाण्ड के ज्ञाता नहीं और एतदर्थ अभी आर्य्यसामाजिक वैदिक कर्मकाण्ड को यथावत् नहीं जानते, मैंने थोड़ा बहुत जाना तब प्रतीत हुआ कि मृत पितरों के निमित्त श्राद्ध करना आदि कर्तव्य सर्वथा वेदानुकूल है इत्यादि, परन्तु पाठकगण अवश्य पण्डितजी के कर्मकाण्ड विषयक लेख को पढ़कर अर्थात् "आस्तिक लोगों के सिद्धान्त वा मन्तव्य" इस शीर्षक वाले लेख को अविकल पढ़ व विचार कर पुनः वर्त्तमान् पं० जी के कर्त्तव्य व जीवन दशा को दृष्टि-

गत कर अवश्य यह समझ लेंगे कि पण्डितजी वास्तव में टट्टी की आड़ में शिकारी बने बैठे थे क्योंकि पण्डितजी का एक प्रस्ताव जो आर्य्यावर्त्त पत्र में छपा था वह पश्चात् आर्य्यसिद्धान्त भाग १० में भी छाप दिया था उसमें पण्डित जी का यही कथन था कि याज्ञिक पद्धति वा कर्त्तव्य आर्य्य-समाज में ठीक नहीं माना जाता, उसका ठीक निर्णय होना चाहिये; वह प्रस्ताव हम पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं।

प्रस्ताव मान्यवर पं० भीमसेनजी शर्मा का।

ओ३म्

सब प्रतिनिधि सभाओं के अधिकारी तथा प्रतिष्ठित विचार शील धर्मानुरागी कालिज कमेटी के नेता आदि आर्य्य-वैदिक धर्म के शुभचिन्तक पुरुषों की सेवा में निवेदन है कि वर्त्तमान समय मेरे कारण जो अव्यवस्था सामाजिक लोगों में फैली है उसकी शान्ति के लिये सब प्रान्तों की प्रतिनिधि सभायें आपस में विचार मिला के शीघ्र उद्योग करें किन्तु थोड़ा सा हल्ला गुल्ला छापने आदि द्वारा करके ही शान्त न हो बैठें। ऐसा होने से धर्म विषय की अव्यवस्था मिटेगी नहीं। और वह उद्योग इस प्रकार आरम्भ करना चाहिये कि सब प्रान्तों से सब प्रतिनिधियों की ओर से इस कार्य्य की पूर्त्ति के लिये चार व छः हज़ार रुपया चन्दा किया जाय। और सब प्रतिनिधि सभाओं की ओर से कम से कम १० मनुष्य ऐसे विश्वास-पात्र छांटे जायं जो विशेष बुद्धिमान् होने पर संस्कृत के विद्वान् तथा सत्यवक्ता आप्त हों। ये भले ही

ब्राम्हणादि सब वर्णों के हों उनके निर्वाहार्थ यथोचित धन, चन्दा किये फ़ण्ड से दिया जाय। एक कोई स्थान सर्वानुमति से नियत किया जाय जहाँ सब मूलवेद सब वेदों के ब्राम्हण तथा सब ब्राम्हणों के श्रौत सूत्र और गृहसूत्रादि उपयोगी पुस्तक भी इकट्ठे किये जायं। वे दसो मनुष्य एक दो वा तीन वर्ष तक वेद ब्राम्हण और श्रौत सूत्रादि में अपनी अच्छी जानकारी करें। प्रतिनिधि सभाओं के प्रधान २ अधिकारी तथा कालेज कमेटियों के मुखिया लोग बीच २ में उनका निरीक्षण करते रहें। वे लोग इन वेदादि ग्रंथों को आद्योपान्त अवगाहन करके अपनी ठीक ठीक जानकारी कर लेवें। तदनन्तर यह व्यवस्था बांधें कि सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी के माने हुये ग्रन्थों में से अमुक २ अंश इन इन युक्ति प्रमाणों से सत्य हैं। और यह २ अंश इन २ युक्ति प्रमाणों से त्याज्य हैं। इस प्रकार ग्रंथों को जानलें कि जो अन्य पंडित को भी समझा सकें। और इसी के साथ यह भी व्यवस्था बांधें कि श्रौतस्मार्त कर्म इस २ प्रकार होने चाहिये। दर्श पौर्णमास आग्रयणादि इष्टियों की, चतुर्मास्यादि पर्वो और अग्निष्टोमादि यज्ञों की ऐसी अच्छी २ युक्ति प्रमाण सहित पद्धतियां बना दें कि जिनमें फिर किसी को सन्देह न हो तथा पोपलीला कहने, मानने का अवसर न मिले। इस दशा में यदि कोई मनुष्य उस व्यवस्था के ठीक समझा देने पर भी वैसा न माने तो उसको स्पष्ट ही आर्य्यसमाज का विरोधी, पोप, प्रसिद्ध करदें। इस विषय को जब तक कोई जानता ही नहीं और जानने का उद्योग भी नहीं करता किन्तु अपने को जो काम अच्छा नहीं लगता इतने मात्र से किसी को बुरा समझना वा कहना अच्छा नहीं है।

यदि प्रतिनिधि सभाओं के नेता इस विषय में उद्योग वा विशेष आन्दोलन न करके सुस्त रहिजायं तो जानो धर्म का निर्णय वे करना ही नहीं चाहते—ऐसा अन्य लोग समझेंगे। यदि ऐसा उद्योग करके ठीक ठीक वेदाशयानुकूल अचल व्यवस्था नियत करें करावेंगे तो वे लोग धर्म की पक्की मेंड (मर्यादा) बांधने वाले संसार में बहुत काल तक कीर्ति के पात्र बनेंगे। इस उद्योग का पक्का विचार जब ठहरे तभी समाचार पत्रादि द्वारा सर्वसाधारण को यह भी विदित कर दें कि कर्मकाण्ड विषय पर विचार हो रहा है : इस विचार पक्ष में लाये हुये विषय पर लेखादि द्वारा कोई भी विशेष विचार प्रकट न करे। ऐसा करने से तत्काल भी शान्ति होगी और आगे भी परिणाम बहुत उत्तम होगा। संस्कार विधि के भी सन्देह निवृत्ति का उपाय इसी में आ जायगा। अर्थात् यह काम सभी प्रकार अच्छा है। अत्यन्त उचित है कि आप लोग कटिबद्ध हों, आलस्य में न पड़े रहें; इसके लिये जो परिश्रम पड़े स्वीकार करें, एक २ दिन सभी को संसार छोड़ना है। धर्म विषय के परिश्रम का परिणाम साथ जायगा, अन्य सब प्रियभोग शरीर के साथ ही छूटेंगे। इस लिये अवश्य उद्योग कीजिये।

आपका—भीमसेन शर्मा।

इस प्रस्ताव के नीचे ही आ० सि० भा० १० अ० १०। ११। १२ पृष्ठ २६ में मान्यवर पण्डित जी ने लिखा है कि "इस प्रस्ताव से मेरा यही प्रयोजन था कि ठीक निर्णय होना चाहिये कि वेदानुकूल सत्य २ यज्ञादि कर्म कैसे हो, और अब भी यही विचार है कि ठीक सत्य निर्णय होना चाहिये।

यदि निर्णय होने पर मेरी भूल निकले तो मैं अवश्य मानूंगा। इसके अनन्तर पृष्ठ ३६ में लिखा कि "आर्य्यसमाज ने वैदिक धर्म प्रचार करना विशेष रूप से स्वीकार किया है इसलिये वैदिक धर्म वास्तव में क्या है इस अंश पर अधिक आन्दोलन वा निश्चय करके मानने में ही सर्वोपरि उसका हित होगा। इस लिये इस विषय में शुद्ध हृदय से विचार करें कि यज्ञादि कर्म काण्ड साक्षात् वैदिक धर्म कैसे हैं ?

पंडित भीमसेनजी की धोखे की टट्टी वा टट्टी की ओट में शिकार करना।

पाठकगण! इस ऊपर लिखे प्रस्ताव वा लेख से आप मान्यवर पण्डित जी के भाव को भले प्रकार समझ गये होंगे कि पण्डित जी को यहां तक केवल यज्ञादि कर्मकाण्ड पर ही आर्य्यसमाज के साथ वैमत्य है यद्यपि आर्य्य समाज सभी वैदिक कर्मकाण्ड को यथावत् मानता और मानने को उद्यत है। यही श्रीस्वामी जी ने भी लिखा है कि वेद स्वतः प्रमाण है अन्यग्रन्थ परतः प्रमाण वेदानुकूल होने से मान्य हैं अतएव वेद वा तदनुकूल ग्रन्थों में वर्णित वा प्रतिपादित सभी कर्मकाण्ड सर्वथा वा सर्वदा माननीय है यह श्रीस्वामीजी वा आर्य्यसमाज का मुख्य मन्तव्य है। इससे आर्य्यसमाज इनकार नहीं करता और न किसी वेदमतानुयायी को करना चाहिये। अब रहा वह विचार कि वेदानुकूल और वेद विरुद्ध की परीक्षा कैसे हो तो इसके निमित्त आचार्यों के मन्तव्यानुसार दो प्रकार समुपलब्ध होते हैं एक तो स्पष्ट जिसका वर्णन वा प्रतिपादन वेद में हो वह वेदानुकूल है;

द्वितीय—महर्षि जैमिनिजी के मीमांसा शास्त्र में कहे अनुसार कि "विरोधे त्वनपेक्ष्यस्यादसतिह्यनुमानम्" अर्थात् शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म का प्रतिपादन साक्षात् वेदों में दृष्टिगत न हो तो जब तक उसकी विरोधिनी श्रुति वेद में स्पष्ट प्राप्त न हो तावत् वह वेदानुकूल ही माना जायगा इन दो कसौटियों में न आनेवाला धर्म कदापि वैदिक-धर्म नहीं हो सकता; यह स्वयं सिद्ध है। इस लिखने से मेरा यह अभिप्राय है कि मान्यवर पण्डित जी का उक्त प्रस्ताव यज्ञादि कर्मकाण्ड के निर्णयार्थ ही जब निकला था तब अच्छा होता कि उस प्रस्ताव के अनुमोदन और पूर्त्यर्थ अवश्य उद्योग करते रहते तो सम्भव था कि कदाचित् कोई उत्तम परिणाम अवश्य निकल आता। यदि आर्य्यसमाज के नेता वा विद्वान् तदर्थ कोई उद्योग जब किसी प्रकार न करते तो स्पष्ट आपका अनुमोदित मन्तव्य व विचार सत्य सिद्ध होता परन्तु पण्डित जी का प्रस्ताव वास्तव में धोखे की टट्टी का रूप धारण किये हुये था जैसा कि आगरे के शास्त्रार्थ में वह प्रकट हो गया अर्थात् पण्डित जी के उक्त प्रस्ताव के अनुसार आगरे समाज ने सादर पण्डित जी को कर्मकाण्डान्तर्गत श्राद्ध के निर्णयार्थ आह्वान किया, इसपर पण्डित जी फर्वरी मास सन् १६०१ ई० की १६ तारीख़ को आगरे पधारे और ता० १६। २। १ से उक्त प्रस्तावानुसार श्राद्ध विषय पर विचार प्रवृत्त हुआ परन्तु "चौबे गये छब्बे होने, रहगये दुबे" इस जनश्रुति के अनुसार उक्त प्रस्तावानुसार सत्यका निर्णय करना अभीष्ट पण्डित जी का था परन्तु कर्मकाण्ड विषयक ग्रन्थों को जान व मानकर व सम्यक् प्रकार विचार कर इटावे

में अग्निष्टोम यज्ञ कराया तभी से कर्मकाण्ड का सच्चा ज्ञान वा निर्णय पण्डित जी ने प्राप्त किया और तभी से श्राद्धादि विषय पर आर्य्य समाज के साथ विवादारम्भ हुआ। पाठक गण विचार करें कि इसी समय जबकि अग्निष्टोम यज्ञ कराया, पण्डितजी को मृतक श्राद्ध व मेषमेधी वेदानुकूल निश्चित हुये। साथ ही इसके यह भी पण्डितजी ने माना के हिंसा युक्त पशु-वध आदि कर्म कर्त्तव्य कर्म वा वेदानुकूल नहीं न वह मैं कर्त्तव्य मानता हूँ। इतना ही नहीं, किन्तु पण्डितजी ने पशुवध के निमित्त आ० सि० भाग १० अङ्क ७। ८। ६ के पृष्ठ ४५ में बड़ी प्रबलता के साथ लिखा है कि "वेद विरुद्ध सिद्ध न होने पर भी पशुवध को हमने दो कारणों से कर्त्तव्य नहीं माना—एक तो इसमें प्रत्यक्ष हिंसा दोष है उस हिंसाको अहिंसा ठहराना यह अन्य बात है पर अहिंसा ठहराने से भी यह प्रयोजन भीतरी निकला कि हिंसा ठहरने की शंका से हिंसा को अहिंसा ठहराया तो हिंसा अवश्य है। द्वितीय योग सांख्यादि शास्त्र-कर्त्ता वेदमतानुयायी होने पर भी यज्ञादि विषयक हिंसा को अच्छा नहीं मानते; यदि यज्ञ में पशुवध वेदानुकूल है तो पतञ्जलि आदि महर्षि ठीक वेदानुयायी नहीं. यदि वे लोग ठीक वेदानुयायी थे तो यज्ञ में पशुवध वेदानुकूल नहीं : हमारा निश्चय है कि वे पूर्णतया वेदानुयायी थे। परन्तु श्राद्ध और मेषमेधी आदि के विषय में किसी ऋषि महात्मा ने अधर्म वा अपनी अरुचि नहीं दिखलाई और न प्रत्यक्ष में ही कोई अधर्मांश इन में दीखता है, योग सूत्र पा० २ सू० ३४ पर व्यास भाष्य में लिखा है कि "मोहेन धर्मो भविष्यति" देवता के नाम से यज्ञादि में पशु की हिंसा करने से धर्म होगा इस

प्रकार धर्म कार्यों में हिंसा करना मोह पूर्वक अर्थात् अज्ञान पूर्वक हिंसा कहाती है अर्थात् यज्ञादि में हिंसा करने से धर्म होगा यह मोह नाम अज्ञान है। यद्यपि यहां यज्ञादि का नाम नहीं तथापि धर्मकार्यों के साथ ही होनेवाली हिंसा में यह कह सकते हैं कि धर्म समझ के कोई हिंसा करे और धर्म-कार्यों में यज्ञ सर्वोपरि है। इससे योग का आशय स्पष्ट है कि पशुवध से धर्म होगा ऐसा विचार अविद्याग्रस्त है किन्तु ठीक नहीं। ऐसे ही विचारों से ःहमने पशुवध को उत्तम नहीं समझा इत्यादि, "इस पशु वध विषयक पण्डित जी के विचार को जो मास जून सन् १८०० ई० में लिखा इसके ठीक ८ मास पश्चात् आगरे के शास्त्र में जो फ़र्वरी सन् १८०१ में हुआ इस पूर्व निर्णीत व सम्यक् निश्चित किये वेदविरुद्ध कर्म पशुवध कर्म को (अर्थात् गदहा का होम गाय का होमादि सभी को वेदानुकूल कर्त्तव्य कर्म मान बैठे तो हमारे देश के समझदार मनुष्य अवश्य पण्डित भीमसेन के प्रस्ताव व कर्मकाण्ड की फिलासफ़ी को भले प्रकार समझ सकेंगे कि पण्डित जी का प्रस्ताव केवल धोखे की टट्टी वा टट्टी की ओट शिकार का भाव रखता हुआ सर्वसाधारण के लिये केवल छलरूप था क्योंकि जिस पशुवध का निर्णय स्वयं पण्डित जी कर चुके थे कि यह सर्वथा वेद विरुद्ध है फिर चट ही वेदानुकूल मान लिया; इसी प्रकार मृतक श्राद्ध व मेष मेषी का विवाद वा कर्मकाण्ड विषयक विचार हठ पूर्वक अन्तःकरण के विरुद्ध पण्डित जी मान बैठे हैं। वास्तव में पण्डित जी के पास न कोई प्रमाण वा युक्ति है इसीलिये शास्त्रार्थ आगरा में भी अभीष्ट सिद्ध्यर्थ कोई प्रमाण उपस्थापित न कर सके, प्रयोजन यह कि जैसे आगरा

शास्त्रार्थ में हठ वा स्वार्थ वश गर्द मेज्यादि घृणित वेद विरुद्ध कर्मों को वेदानुकूल कह बैठे इसी प्रकार श्राद्धादि वेद विरुद्ध कर्मों को भी वेदानुकूल कह व मान बैठे अतएव कोई भी बुद्धिमान् पण्डित जी के हठ वा दुराग्रह वश माने हुये धर्म पर वा कर्त्तव्य पर विश्वास नहीं कर सकता। इतना ही नहीं किन्तु मान्यवर पण्डित भीमसेन जी ने जहां इसी आ० सि० भाग १० अङ्क ७।८।९ के पृष्ठ ३३ पर बड़े प्रबल दावे के साथ लिखा कि:—

"हमको ठीक २ बहुत ही पुष्ट निश्चय है कि जिसका टलना सौ में एक विश्वे भी सम्भव नहीं कि जैसे पौराणिक मूर्त्तिपूजक लोग अनेक जन्मों में भी असंख्य मिलकर भी मूर्त्तिपूजा को वैदिक धर्म नहीं ठहरा सकते वैसे आप अनेक मिल कर भी अनेक जन्मों में भी श्राद्ध को वेद विरुद्ध कदापि नहीं ठहरा सकोगे" परन्तु इस ऊपर लिखे पण्डित जी के दृढ़ सङ्कल्प वा विकार को अनेकों असंख्यों नहीं किन्तु एक ही पण्डित भीमसेन जी ने ही अनेक जन्मों नहीं किन्तु एक इसी जन्म में अनेकों वर्षों नहीं किन्तु एक ही वर्ष के अन्तर्गत मूर्तिपूजन को वैदिक धर्म ही नहीं साक्षात् वैदिक धर्म कह दिया तो अब हमारे पाठकगण भले प्रकार विचार सकते हैं कि पण्डित जी की किस बात को निश्चयात्मक वा सत्य माना जाय। वास्तवमें बात यह है कि स्वार्थ जब मनुष्य को दबाता है तो उसे धर्माधर्म वा सत्यासत्य का किञ्चित् भी विचार नहीं रहता; यही ठीक दशा पण्डित जी की हुई क्योंकि जिस समय पण्डित जी का आर्य्यसमाज ने बहिष्कार का प्रारम्भ इस स्वार्थ-परता वा भ्रमात्मक होने के

कारण किया तब पण्डित जी ने सोचा कि हम इसी प्रकार अपने को तटस्थ कहते वा लिखते रहे तो इधर आर्य्यसमाज से हमारा विश्वास उठही गया अब कौन किताबें आदि लेगा। जब कोई आर्य्यसामाजिक किताबें वा मासिकपत्रादि ही न लेगा तो जीव का निर्वाह कैसे होगा क्योंकि पौराणिक सनातन-धर्मी मूर्तिपूजादि के माने बिना दमड़ी का दस सेर भी न पूंछेंगे इसलिये चलो सनातनी रूप ही धारण करें; किसी प्रकार जीवन-निर्वाह तो करना ही होगा। सत्य है "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्" अर्थात् बुभुक्षित (भूखा) मनुष्य दुनिया में कौन पाप नहीं कर गुजरता, यहां तो उदर पालनार्थ मूर्तिपूजनादि ही वेदानुकूल कहना वा मानना पड़ेगा इसमें क्या ? थोड़ा सा लेखनी को कष्ट ही तो देना होगा; बस, यह निश्चय कर चट वही मूर्तिपूजन जो कदापि वेदानुकूल होने को समर्थ न था अब पण्डित जी को वेद के अक्षर अक्षर से मूर्तिपूजन दृष्टि गत हो रहा है। धन्य है स्वार्थ तेरी अपार महिमा ! ! !

बस, हमारे पाठकगण अवश्य पण्डित जी के विचारों पर शोक करेंगे और यह परिणाम भी अवश्य निकाल लेंगे कि ऐसे मनुष्य संसार में धर्म का उद्धार कर सकते हैं कि जिनके सङ्कल्प विचार क्षणिक कमल के पत्ते पर जलस्थिति के सदृश भी न हों।

मान्यवर पं० भीमसेन जी की भूल स्वीकृत वा प्रार्थना

पाठक गण ! मान्यवर पं० भीमसेन जी ने आ० सि० भाग १० अङ्क ७।८।९ के पृष्ठ ३० से "प्रश्नोत्तराणि" शीर्षक

देकर जो लेख लिखा कि जिसमें श्री स्वामी जी को मोटे होने से गुरु मानता हूँ इत्यादि अनुचित लेख लिख कर गुरु ऋण से उद्धार होने का सङ्कल्प किया तथा पृष्ठ ३६ में लिखा कि " यदि अब तक स्वामी जी होते तो पूरा तर्पण श्राद्ध फिर भी मान लेते—जब आदि अन्त में मानना सिद्ध है तो बीच का न मानना ठीक नहीं किन्तु बीच में जब देखा कि अङ्गरेज़ी फ़ारसी पढ़े नई रोशनी वाले ऐसी बात मानने से वेद में भी रुचि न करेंगे तो इनको इकट्ठे करने के लिये ऐसी बात छोड़दो" इत्यादि मनघड़ित कपोल कल्पित बातें लिख कर पण्डित जी ने शिष्यत्व का पूर्ण परिचय दिया। ऐसे अनुचित असत्य लेख लिखे जाने पर लाला मुंशीराम जी आदि आर्य्य पुरुषों ने यही समुचित ज्ञात किया कि पण्डित भीमसेन जी को बुला कर इस प्रकार अनुचित कार्य्यवाही करने से रोका जाय और अच्छा हो कि अब भी वह अपने भ्रम वा आनुचित्य को स्वीकार करलें और सबेरे का भूला शाम को घर आ जाय तो वह भूला नहीं कहा जाता, इस जन-श्रुति के अनुसार अपनी अनुचित कार्य्यवाही पर पश्चात्ताप कर आगे को अधर्म के कलङ्क से बच जावें, निदान यही विचार—दिल्ली में लाला मुंशीराम मुंशी नारायण प्रसाद आदि अनेक आर्य पुरुष एकत्रित हुये और ता० १२।८।१९०० को दो तार पण्डित जी के नाम दिल्ली पधारने के लिये इटावा भेजे। इस पर मान्यवर पण्डित भीमसेन जी उसी दिन दिल्ली पहुँचे; पश्चात् पहुंचने पर पण्डित जी से कहा गया कि आप अपना लेख जो सर्वथा अनुचित है वापिस लें; इस पर पण्डितजी ने अपनी भूलस्वीकार करते हुए निम्न लिखित पत्र लिख दिया।

पत्र पंडित भीमसेनजी का।

आर्य्यसिद्धान्त भाग १० अङ्क ७। ८। ६ में जो स्वामीजी के विषय में लिखा गया है कि (श्राद्ध को आदि अन्त में स्वामी जी ने माना है बीच में जब देखा कि अङ्गरेजी फ़ारसी पढ़े नई रोशनी वाले ऐसी बात के मानने से वेद में भी रुचि न करेंगे तो इनको इकट्ठे करने के लिये ऐसी बात छोड़ दी) मेरा यह लेख केवल अपना अनुमानमात्र था। इस लेख से अनेक आर्य्य महाशय स्वामी जी की गौरव हानि समझते हैं। इसलिये उस लेख को मैं वापस लेता हूँ क्योंकि मैं स्वामीजी को पूर्ववत् ठीक २ गुरू मानता हूँ, मैंने उस लेख से गौरव हानि नहीं समझी थी और यज्ञादि कर्मकाण्ड विषय अब से अनेक मुख्य आर्य्यों के विचारानुसार विचार पक्ष में लाना निश्चित हुआ है। इसलिये श्राद्ध विषयक मेरा सब लेख भी विचार पक्ष में समझना चाहिये। क्योंकि श्राद्ध भी यज्ञादिक कर्मकाण्ड के अन्तरगत है और विचार पक्ष में लाना मुझे भी स्वीकार है। अभी सिद्धान्त नहीं है किन्तु निर्णय होने पर जो सिद्धान्त स्थिर होगा वही मेरा भी सिद्धान्त होगा।

ह०—भीमसेन शर्म्मा

इसके अतिरिक्त आ० सि० भा० १० के अङ्क १०। ११। १२ के पृष्ठ २६ में उक्त पत्र के विषय में लिखते हुये पं० जी ने स्पष्ट स्वीकार किया कि उक्त लेख लिखते समय मेरे चित्त में कुछ तेजी व किसी कक्षा का क्रोध आगया था; उसके रहते हुये वह लेख लिखा गया था सो भूल थी; यह मैंने स्वीकार किया।

मान्यवर पं० भीमसेन जी की प्रार्थना ।

दिल्ली में मैंने जो भूल स्वीकार की थी वह तो अन्य अख़बारों द्वारा भी अनेक महाशयों को ज्ञात हो चुकी है तथा इस अङ्क में भी छपा है इससे भी सब महाशयों को ज्ञान ही होगा । अब और भी विशेष रूप से पहिले अङ्क के लेख का तथा इस अङ्क में छपे (मुझको किसी समाज में न समझें, मेरे शरीर को भी विचार पक्ष में समझें, मुझसे शास्त्रार्थ करलें) इत्यादि वाक्य किन्हीं महाशयों को कठोर जान पड़ें तो उनका मुझे अवश्य क्षमादान देवें और मेरी उस कठोरता के विषय में भूलही समझें । द्वितीय यह भी विदित रहे कि-

यदि मामप्रतीकार-मशस्त्रं शस्त्र पाणय: ।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्यु-स्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

अर्जुन ने कहा है कि यदि अपने बचने का उपाय न करते हुये शस्त्रों रहित मुझको शस्त्र हाथ में लिये धृतराष्ट्र के पुत्र युद्ध में मार डालें तौ भी मैं अपना कल्याण मानूंगा और लौटकर उन को न मारूंगा । इसी प्रकार मैं भी कहता हूं कि आर्य्यसमाजस्थ लोग मुझको अत्यन्त तङ्ग करें, सीमा से भी अधिक दुःख पहुंचावें तौ भी मैं आर्य्यसमाज का प्रतिपक्षी जीवन भर न बनूंगा । और प्रतिपक्षियों को सहायता भी कदापि नहीं दूंगा । मैं प्रथम से आर्य्यसमाज में रहा, सब प्रकार के कार्य्य वा सहायता आर्य्यसमाज से मुझको मिली और मुझसे भी समाज को सहायता मिली: अब यदि मैं स्वयं प्रतिपक्षी बनूं वा प्रतिपक्षियों को सहायता दूं तो कृतघ्नता दोष मुझको होगा । अब रहा यज्ञादि विषय का

विचार सो सब आर्य्य लोगों को जैसा अच्छा लगे विचार करें और मानें, मैं इस विषय में प्रतिपक्ष के प्रकार से आगे कुछ नहीं लिखूंगा। इस लिये आप अवश्य ही पिछली धृष्टता को क्षमा कीजिये॥

आपका—

भीमसेन शर्म्मा, सरस्वती प्रेस, इटावा।

मान्यवर पंडितजी की प्रार्थना व भूल पर हमारी प्रार्थना।

पाठक वर्ग! माननीय पण्डित जी के उपरि लिखित दोनों लेखों को जो भूल वा प्रार्थना के नाम से लिखे हैं देखकर कौन सहृदय विचारशील पुरुष होगा जो शोक प्रकट न करेगा। एक बालक भी अपने कथन का विचार रखता है कि मैंने क्या पूर्व कहा और अब कहता हूं परन्तु पण्डित भीमसेन जी ऐसे विचारशील पुरुष वेद शास्त्र के ज्ञाता, संसार के मार्ग प्रदर्शक, शास्त्रीय सिद्धान्तों के ऊपर उत्तमोत्तम निबन्ध के लेखक, श्रौत स्मार्त ग्रन्थावलोकन कर अग्निष्टोम यज्ञ के कराने वाले धुरन्धर विद्वान् की यह दशा-हां कोई शास्त्रीय बात होती तो सम्भव था कि ता० ३०।६।१६०० ई० के निकलने वाले आर्य्य सिद्धान्त के टाइटिल पर छपी प्रार्थना के लिखते समय श्रौत स्मार्त ग्रन्थोक्त कर्मकाण्ड का यथार्थ ज्ञान न होने पर लिख गये; पुनः ८ मास पश्चात् जनवरी या फरवरी सन् १६०१ के छपे (वर्त्तमान आर्य्य समाज से मेरे पृथक् होने का कारण तथा धर्मान्दोलनार्थ सूचना) इस शीर्षकवाले पत्र में यथार्थ ज्ञान होने पर

उसका खण्डन कर गये परन्तु पण्डित जी की लिखी प्रार्थना में न तो कर्मकाण्ड का विषय है न उपासना और ज्ञान काण्ड का। वह तो सीधी बात यह है कि मैं आर्य्यसमाज का विरोधी जीवन भर न बनूंगा और न विरोधियों को सहायता दूंगा, यदि ऐसा करूं तो कृतघ्नी हो जाऊंगा इत्यादि। तो अब पाठकगण विचार करें कि इस लेख लिखने के आठ मास पश्चात् ही जब पण्डित जी विरोधी बन पक्के १६ आने सनातनी बनगये और कृतघ्नता का टीका मत्थे लगा लिया तथा साधारण सी बात में कि जिसको सर्वसाधारण भी समझते हैं संसार वा ईश्वर का भय न किया तो शास्त्रीय बातों को लौट फेर कर बदलना वा झूठ को सच वा सच को झूठ कर देना माननीय पण्डित जी को कौन दुःसाध्य बात थी, निदान यही बात शास्त्रों में भी कर बैठे जैसे कि मैं पूर्व पाठकों की सेवा में निवेदन कर चुका हूं और इस स्थान पर परमावश्यक समझ कर पुनरपि उद्धृत करता हूं:—

पाठक गण स्मरण रखें कि माननीय पण्डित जी का लेख आ० सि० भा० १० अङ्क १०।११।१२ के पृष्ठ ३६ पर "अथ प्रश्नोत्तरराशि" इस शीर्षक से जो प्रकाशित हुआ था उसमें पण्डित जी ने अपने धार्मिक जीवन के परिवर्त्तन में जो हेतु दिया वह निम्न लिखित है:—

"सच्ची बात यह है कि प्रथम मैं श्रौतादि कर्मकाण्ड को कुछ नहीं जानता था। किन्तु चलते हुये प्रवाह में अन्यों के समान मैं भी बह रहा था; तब अन्य लोग मुझको अपने अनुकूल समझते थे। और जब से मैंने यज्ञ कराने के विचार से

ग्रन्थों का अवगाहन किया तो पितृयज्ञरूप श्राद्ध भी यज्ञ के अन्य अङ्गों के तुल्य ही कर्त्तव्य प्रतीत हुआ। पहिले मैं यज्ञों को भी नहीं जानता था, तब नाम मात्र मानना न मानने के तुल्य ही था। और स्मार्तरूप से श्राद्ध लोक में जिस किसी प्रकार प्रचरित था इसलिये अन्यों के विचारानुसार मैं भी श्राद्ध को नहीं मानता था। मेरा निश्चय है कि आस्तिक लोगों में जो २ पुरुष शास्त्रों को देख, सोच विचार के उनके आशय वा सारांश को स्वयं जान सकते हैं वे लोग तो मेरे वा अन्य भी किसी के पहिले वा पिछले किसी विचार को न मानें किन्तु वेद शास्त्र का जो ठीक अभिप्राय हो उसी के अनुसार मानें। और साधारण मनुष्यों को स्वयं विचार-शक्ति न होने से किसी अन्य का सहारा लेना पड़ता है। इसलिये उनका जिस पर चित्त स्वीकार करे उसके उपदेश वा कथन को मानें। अथवा जो कोई मेरे किसी कथन को ही मानना चाहते हों तो इस पिछले कथन को मानें। क्योंकि जिन ग्रंथों के प्रमाणानुसार कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निश्चय होता है उनको देख समझ कर अब मैं कहता हू और पहिला मेरा कथन प्रवाहानुसार था इत्यादि"

इस ऊपर लिखे पण्डित जी के लेखानुसार स्पष्ट हो गया कि अग्निष्टोम यज्ञ जो सन् १८९९ ई० में प्रशंसित पण्डित जी ने कराया उस यज्ञ के निमित्त जब श्रौतस्मार्त ग्रंथ देखे तब सब कर्त्तव्याकर्त्तव्य, धर्माधर्म, सत्यासत्य का यथार्थ ज्ञान पण्डितजी को हुआ और इसलिये उस यज्ञ के पश्चात् के जो विचार हैं उनको पण्डित जी ने सत्य और यथार्थ माना जैसा कि ऊपर वाले लेख से हमारे दयालु पाठकगण समझ लेंगे

परन्तु शोक कि पण्डित जी ने श्रौत ग्रंथावलोकन से प्राप्त हुए ज्ञान से निश्चित विचारों पर भी स्वार्थ परता से चौका लगा दिया जैसे कि यज्ञ के पश्चात् श्राद्ध मेध मेधी का ज्ञान पण्डितजी को हुआ; साथही इसके पण्डित जी को स्मार्त ग्रन्थों के अवगाहन से निम्न लिखित सिद्धान्तों का भी यथार्थ ज्ञान हुआ था यथाः—आ० सि० भा० १० अ० ७। ८। ९ पृष्ठ ३

"१—हमको ठीक २ बहुत ही पुष्ट निश्चय है जिसका टलना सौ में एक बिस्वे भी सम्भव नहीं कि पौराणिक मूर्ति-पूजक लोग अनेक जन्मों में भी असंख्य मिल कर भी मूर्ति-पूजा को वैदिक धर्म नहीं ठहरा सके"

पुनः पृष्ठ ३७ पर लिखा कि "हिन्दु लोगों से हम निवेदन इसलिये नहीं करते कि वे लोग अपनी पौराणिकी अन्ध परम्परा को कदापि न छोड़ेंगे। न वे लोग वेदादि शास्त्रों को वैसा मान सकेंगे, इसलिये उन लोगों का पूर्ण आस्तिक होना सम्भव ही नहीं"

पुनः पृष्ठ २७ पर लिखा है कि "पौराणिक लोगों ने पुराणादि तथा तन्त्रादि ग्रन्थों से लेकर अनेक अंश गणेशपूजन गौरी-पूजन, अङ्गन्यास, करन्यासादि वैदिक कर्मकाण्ड की पद्धतियों में मिला दिया है। क्योंकि सूत्र ग्रंथों में कहीं नाम मात्र भी गणेश-पूजनादि नहीं लिखा और न वेद ब्राह्मण और श्रौत सूत्रों में भूमि पूजन, गणेशपूजनादि है तथा गणेशपूजनादि का योग नाम मेल वेद और ब्राह्मणों में नहीं इसीलिये वह वेदानुकूल नहीं किन्तु अयुक्त है"

पुनः पृष्ठ ३५ व ३६ पर लिखा कि "पौराणिक मूर्तिपूजा गङ्गा स्नान से मुक्ति तीर्थावतारादि वेद बाह्य अंशों को मैं वैदिक .

नहीं मा..ता वा मूर्तिपूजादि वैदिक धर्म नहीं, इस कारण उसके मान्य होने का अनुमोदन मैं नहीं करता"

पुनः पृष्ठ ४५ में लिखा कि "यज्ञ में पशुवध करना वैदिक धर्म वा कर्त्तव्य कर्म नहीं, यह पहिले भी दिखा चुका हूं"

पुनः पृष्ठ ४८ पर लिखा "कि गर्द भेज्या और मैत्रावरुणी वशा तथा पशुवध का विशेष व्याख्यान—इन सब को मैं भी उत्तम वा कर्त्तव्य नहीं समझता"

पुनः पृष्ठ ५० पर लिखा कि "पौराणिक लोग चाहे जितना छिपावें, थोप थाप करें कि मूर्तिपूजा तीर्थगङ्गास्थान अवतारादि किसी प्रकार वैदिक धर्म ठहरजायं वा वेदानुकूल ही मानलिये जायं सो जब असल में मूर्तपूजादि वैदिक नहीं है, इससे त्रिकाल में भी यह नहीं हो सका कि इन को कोई पौराणिक वेदानुकूल ठहरा सके। बहुत से पौराणिक पण्डितों ने यह बात अब तक ठीक २ जान, मान भी ली है" इत्यादि—

ऊपर लिखे निश्चित सिद्धान्तों का उल्लेख मान्यवर पण्डित जी ने आ० सि० भाग १० के अङ्क ७।८।९ में सविस्तर किया है, इसके अनन्तर इसी भाग के अङ्क १०।११।१२ के टाइटिल के अन्तिम पृष्ठ पर जो प्रार्थना छापी है सो भी पाठकों के दिग्दर्शनार्थ इसके पूर्व उद्धृत कर दी है जिस को हरे पाठक गण भले प्रकार पढ़ कर विचार करेंगे कि ३० अगस्त १९०० ई० तक उपर्युक्त लेख व प्रार्थना छापी, इसके ५ या ६ मास पश्चात् ही पण्डित जी ने निज प्रार्थना में दृढ़ प्रतिज्ञा, आर्य्य समाज के साथ विरोध न करने की, करते हुए भी निम्न लिखित पत्र छाप कर इतस्ततः विनीर्ण किया।

मान्यवर पंडित भीमसेन जी का पत्र ।

ओ३म् --वर्त्तमान आर्य्य समाज से मेरे पृथक् होने का कारण तथा धर्मान्दोलनार्थ सूचना—

सर्वसाधारण महाशयों को विदित हो कि यद्यपि पूर्व काल से भी मैं वेदादि शास्त्र के अनुकूल ही लिखने, कहने तथा मानने का उद्योग करता रहा—तथापि जब से मुझे एक यज्ञ कराने के लिये श्रौतस्मार्त कर्मकाण्ड सम्बन्धी वैदिक ग्रन्थ विशेष कर देखने पड़े तब से विशेष कर ज्ञात हो गया कि वर्त्तमान आर्य्य समाज वेदोक्त धर्म कर्म को वास्तव में नहीं मानता। आर्य्य समाज में केवल वैदिक धर्म शब्द का प्रचार मात्र है परन्तु वैदिक धर्म के तत्व को जानने वा मानने वालों का अभाव सा है। अब मुझे अनुमान १॥ वर्ष से ऐसा ज्ञान हुआ कि आ० स० में वैदिक धर्म का अभावसा है, तभी से मैं इस समुदाय से अलग हो गया था। बीच में यह भी विचार मन में आया कि ये लोग धर्मानुकूल सुहृद् भाव से मुझे समझा-दें वा मुझ से कोई समझ लेवे तो अच्छा है। इसी कारण मैंने इन्द्रप्रस्थ में (श्रावण मास वि० ५७ सं०) जब कि सनातन-धर्म सभाओं का बृहत् अधिवेशन था, लाला मुन्शी राम जी तथा सेठ लच्छी राम जी, मुन्शी नारायण प्रसाद जी आदि सभ्य पुरुषों के सम्मुख यज्ञकर्मान्तर्गत स्वनिश्चित पितृश्राद्ध को विचार पक्ष में लेना स्वीकार किया था, जैसा कि मैं आर्य्य सिद्धान्त भाग १० अं ७-९ के पृ० ४५ में पूर्व ही छपा चुका था परन्तु आश्चर्य्य कि पंजाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश की प्रति-निधिसभाओं के अग्रगन्ताओं ने प्रतिज्ञा करने पर भी इन विषयों

के विचार के लिये कुछ भी उद्योग न किया वरन् कृपा कर मेरी सुआशा को निराशा से मिला दिया ॥

यद्यपि मैंने १॥ वर्ष से समाज में जाना भी छोड़ दिया था और आर्य्य सिद्धान्त भाग १० के १०-१२ अङ्कों में छपा भी चुका था कि जब तक मेरे विचार पशुस्थ यज्ञादि कर्म का ठीक २ निर्णय नहो तब तक मुझे कोई आर्य्य न समझे, मैं वर्त्तमान आर्य्य समाजी नहीं हूं। विचार का स्थान है कि जब मैं आर्य्य समाज से स्वयम् व प्रकट कर के पृथक् होगया था तो (हम लोगों ने इन भी० से० श० को आर्य्य समाज से पृथक् कर दिया) ऐसा छपा कर प्रकाशित करना क्या आवश्यक वा उचित था (ऐसे द्वेष पूर्वक हुए वा होनेवाले आक्षेपों का कुछ भी उत्तर देना मैं उचित नहीं समझता) तथापि मैं उन महाशयों के इस प्रस्ताव को अपने लिये विशेष कर हितकारी समझता हूं अर्थात् मेरी चाहना को इन आर्य्य लोगों ने पूर्ण किया। अब मुझे इसका बड़ा हर्ष है कि मेरे साथ किसी मत का बन्धन नहीं रहा, केवल वेद शास्त्रों का बन्धन तो मुझे सर्वदा रखना स्वीकार ही है। मैं आर्य्य-प्रतिनिधि सभा मुरादाबाद को धन्यवाद देता हूं कि मेरे पूर्व प्रस्ताव को प्रकारान्तर से स्वीकार किया है। मैं आर्य्यसमाज तथा धर्म-सभादि के सभी समुदायों से मेल रक्खूंगा, मेरा किसी से द्वेष वा वैर नहीं है। सब के लिये निष्पक्ष वेदानुकूल सत्य धर्म को कहूंगा वा लिखूंगा। आर्य्य समाज में भी अनेक मनुष्य धर्मान्वेषी; धर्म के श्रद्धालु हैं, उनके लिये तथा अन्य धर्म से प्रेम रखने वालों के लिये अब अच्छा समय आया ॥

मेरे साथ वर्त्तमान आर्य्य समाज का जो विवाद हुआ उस का कारण केवल श्राद्ध वा मेरा मेरी ही नहीं है किन्तु सभी वैदिक कर्मकाण्ड विवाद का हेतु है। मैं स्पष्ट कहता हूँ कि आर्य्य समाज श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मन्तव्य पर भी आरूढ़ नहीं है इसीलिये संस्कार विधि भी आर्य्यों में ठीक २ नहीं मानी जाती। धर्म के अन्वेषी, श्रद्धालु धर्म के प्रेमी, आर्य्य वा हिन्दु सब लोगों की सेवा में मेरा विशेष कर निवेदन यह है कि वे महाशय मेरे इस कथन पर विश्वास और शान्ति सन्तोष रखें कि श्राद्ध वेदोक्त है। जीवित माता पितादि की सेवा सुश्रूषा यद्यपि कर्तव्य धर्म है, तथापि उस का नाम श्राद्ध नहीं है और जिज्ञासु लोगों को अवश्य ही ठीक २ इसका निर्णय हो जायगा। तथा हठी लोग कदापि नहीं मानेंगे। यह धर्म का विचार है, कोई लेमगाई का काम नहीं है जो शीघ्र ही मन माना छपा कर कोई सिद्ध कर लेवे। मैं जिज्ञासु लोगों को थोड़े काल में भ्रमण कर २ इस विषय का ठीक २ निश्चय करा दूंगा, तथा लेख द्वारा भी प्रमाण आदि देकर निश्चय करा दूंगा, थोड़ा सन्तोष करें।

मुझे ठीक २ निश्चित विश्वास है कि मेरे साथ निष्पक्ष हो कर सुहृद्भाव से कोई सुबोध शास्त्रज्ञ पुरुष कर्मकाण्ड विषय में चार छः दिन भी विचार करे तो मुझे मनवादे वा मेरी बात को वह मान ले। मैं पूर्व से भी ऐसा चाहता था और अब भी चाहता हूं पर इसकी आशा बहुत कम है और श्राद्धादि के विषय में कोलाहल सम्प्रति अधिक है। लिखने वाले सम्प्रति अविद्वान् अनेक हैं। अपने २ संस्कारों के अनुसार सब लिखते हैं। अनेक लिखनेवालों का मैं एक मनुष्य उत्तर दे भी नहीं सकता और जो उत्तर दे भी सकता हूं तो भी इतने से ही धर्म

जिज्ञासुओं को किसी प्रकार का सन्तोषदायक विशेष निर्णय शीघ्र प्राप्त हो नहीं सक्ता। इसलिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि श्राद्धादि कर्म, मुख्य वैदिक धर्म है वा कोई अन्य वैदिक धर्म है इत्यादि निर्णय होना अवश्य चाहिये। इस कारण मैंने इस कार्य्य की सिद्धि का सुगम उपाय यह सोचा है कि मैं देशाटन करके वैदिक धर्म का निर्णय करूं कराऊं। यद्यपि पूर्वकाल से यह रीति थी कि जिज्ञासु लोग ज्ञानदाता के निकट, आया करते थे पर अब ऐसा समय नहीं है। इससे मैं ही जिज्ञासुओं के पास जा जाकर उपदेश करूं-यह विचार स्थिर किया है। परन्तु इस दशा में छापेखाने आदि का प्रबन्ध वा भार मुझ से कोई सच्चा धर्मात्मा सर्वथा ही ले लेवे, वही अधिकारी वा अध्यक्ष बन के अपनी इच्छानुसार इसका प्रबन्ध करे। यदि कोई महाशय कार्य्यालय का [illegible]धिकार लेना चाहें तो वे मेरे साथ पत्र व्यवहार करें। [illegible] कोई अच्छा अभिज्ञ संस्कृतज्ञ पुरुष इसका मैनेजर प्रबन्धकर्ता नियत होकर मेरी ओर से ही चलावे। ऐसा होने पर देशाटन होसकेगा। यदि कोई संस्कृतज्ञ महाशय प्रबन्ध करना चाहें तो वे मुझे लिखें, वेतन यथोचित पत्र द्वारा निश्चित होगा। मैं इस पर्य्यटन को वैदिक धर्म प्रचार के लिये विशेष उपकारी समझता हुआ, अवश्य करना चाहता हूं। इसलिये जिज्ञासु लोग मुझे सूचना देवें कि अमुक २ प्रान्त में हम लोग श्राद्धादि वैदिक धर्म कर्म का निर्णय करना कराना चाहते हैं। उन २ महाशयों का नाम पता पर्यटन के रजिस्टर में लिखा जावे और जिस प्रान्त में जिज्ञासुओं की अधिकता देखी जाय उधर को पहिले प्रस्थान किया जाय ॥ इति ॥ आपका—भीमसेन शर्मा—इटावा।

इस पत्र के इतस्ततः वितीर्ण करने पर आर्य्यसमाज आगरा ने "धर्मान्दोलनार्थ शास्त्रार्थ की सूचना" नामक एक पत्र पण्डित भीमसेन जी की सेवा में प्रेषित किया जो अविकल शास्त्रार्थ आगरा नामक पुस्तक में छपा है, लेखबाहुल्य से यहां उसे उद्धृत नहीं करते। भाव उसका यह है कि पण्डित भीमसेन जी के उपरि-लिखित पत्र में जो सूचना है उसी सूचना के अनुसार निर्णयार्थ शास्त्रार्थ करने के निमित्त आर्य्यसमाज आगरा ने प्रशंसित पण्डित जी का आह्वान किया, पण्डित जी ने जिस किसी प्रकार शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया:"तदनुसार 'मृतक श्राद्ध विषय पर" ता० १६ फरवरी सन् १६०१ ई० से पंडित भीमसेन जी वा आगरा आर्य्यसमाज के मध्य शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ परन्तु पण्डित जी अपने पक्ष की पुष्टि में कोई वैदिक प्रमाण तो उपस्थापित न कर सके किन्तु उलटे "आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास" इस-जन श्रुति के अनुसार जिसको सर्वथा अकर्त्तव्य वेद विरुद्ध निश्चय कर चुके थे कि जैसा मैं पाठकों को पूर्व दिखा चुका हूं कि वैदिक कर्म काण्ड का यथार्थ ज्ञान होने पर भी पशुबध को पण्डित जी ने सर्वथा वेद विरुद्ध माना, परन्तु शोक! कि पक्षपात, हठ, दुराग्रह के वश हो उस पूर्व निश्चित सिद्धान्त पर भी हरताल फेर ६ महीना पश्चात् ही पशुवध, गदहा का होम करना, श्राद्ध में मांस पिण्ड देना व भक्षण करना, गाय का होम करना आदि महा निन्दनीय कर्मों को सर्वथा वेदानुकूल मान बैठे: पुन. इसके थोड़े समय के ही पश्चात् अर्थात् आगरा शास्त्रार्थ के दो मास पश्चात् अप्रैल के अन्त में निम्न लिखित विज्ञापन मान्यवर पण्डित जी ने छपवा कर निकाला।

ओ३म्

॥ अथ विज्ञापनम् ॥

कृपया इसे अवश्य पढ़िये !

विदित हो कि मैंने वैदिकधर्म की रक्षा के लिये आर्य्य-समाज को छोड़ दिया। मैं अब वैदिक धर्म का विशेष कर प्रतिपादन वा समर्थन करता हूँ। और सर्वसाधारण को सुझाता वा समझाता हूं कि आर्य्यसमाज में वेदोक्त धर्म वास्तव में नहीं माना जाता। ये लोग वेद के नाम से अन्य लोगों को धोखा देते हैं। मैं अग्निहोत्रादि वेदोक्त धर्म को सर्वोत्तम प्रथम कक्षा में, स्मार्त पञ्च महा यज्ञादि धर्म को मध्यम कक्षा में और मूर्ति पूजा तीर्थस्नानादि पौराणिक धर्म को तृतीय कक्षा में श्रेष्ठ मानना तथा चौथी कक्षा में आत्म-प्रिय धर्म को प्रशस्य मानता हूं। वेद, मनुष्य के कल्याणार्थ है; अर्थात् संसार और परमार्थ दोनों दशा में अपेक्षित कल्याण वा सुख, वेदानुकूल चलने वा काम करने से, -ब्राह्मणादि द्विजों को प्राप्त होता है। इसीलिये स्मार्त और पौराणिक धर्मकृत्य जो अधिकारादि भेद से समयानुसार मनुष्यों के कल्याणार्थ वेदवेत्ता विद्वान् महर्षि वा आचार्यों ने चलाये हैं उन मूर्ति पूजादि को भी मैं वेदानुकूल ही मानता हूं किन्तु वेद विरुद्ध नहीं। परन्तु वैदिक कर्म वा वैदिक धर्म मूर्ति पूजादि को नहीं मानता किन्तु पौराणिक मानता हूं; वेदोक्त वा वैदिक वही है जो वेदों में साक्षात् स्पष्ट कहा हो। आर्य्य-समाज वेद वा वैदिक धर्म को वस्तुतः नहीं मानता—यह दिखाना और यथाशक्ति वेदोक्त धर्म का आशय वा तत्व सम-

भाना सम्प्रति मेरा प्रधान काम है। सब को ज्ञात रहे कि मैं पौराणिक धर्म वा मतों का तथा अन्य भी किसी मत का विरोधी नहीं हूं। अर्थात् आर्य्यसमाज का भी मैं विरोधी नहीं; मैं चाहता हूं कि आर्य्यसमाजी लोग ठीक २ वैदिक धर्म को मानने लगें जैसा कि कहते हैं वा मुझे समझा देवें। मैंने कुछ काल तक ऊपर लिखे विचारानुसार भ्रमण द्वारा धर्म प्रचार का विचार स्थिर किया है तदनुसार इस नगर ·· में आकर स्थान ··· ··· ··· पर ठहरा हूं। धर्म के प्रेमी महाशय मेरे पास सन्ध्या के चार बजे से. रात्रि के आठ बजे* तक आया करें और धर्म चर्चा करें सुनें, लाभ उठावें। प्रातःकाल मैं निज का काम करूंगा, किसी विशेष अवसर में ख़ास प्रयोजन के लिये १० मिनट तक किसी से प्रातःकाल भी मिल सकता हूं।

आप लोगों का मित्र—भीमसेन शर्मा।

विचारशील पाठकगण निर्णय करें!

सहृदय महोदय पाठक वृन्द! इस ऊपर लिखे विज्ञापन को पढ़कर पण्डित भीमसेन जी के यथार्थ धर्म भाव पर अवश्य विचार करें कि पण्डित जी कितने सत्यवक्ता धर्मात्मा हैं। क्या कोई बुद्धिमान् यह मान सक्ता है कि मान्यवर पण्डित जी ने आर्य्यसमाज के मन्तव्यों का विरोध किसी सच्चे धार्मिक भाव से किया? कदापि नहीं, क्योंकि जिस मूर्त्तिपूजन, गङ्गास्नान, तीर्थ, अवतारादि को सर्वथा वेद विरुद्ध अक-

*स्मरण रहे कि ठीक सूर्यास्त समय थोड़े काल तक सन्ध्योपासन की छुट्टी मैं लिया करूंगा।

र्सत्य कह व लिख चुके सो तब जब कि श्रौत स्मार्त ग्रन्थों का अवलोकन कर सच्चे कर्मकाण्ड का यथार्थ ज्ञान हो चुका तो भला विचारें- जिस कर्म काण्ड के ज्ञान के साथ मूर्ति पूजा आदि के वेद विरुद्ध होने का निर्विकल्प ज्ञान हो चुका कि जिसके लिये पण्डित जी यहां तक लिख चुके कि जिसका टलना १०० बिस्वे में १ बिस्वा भी सम्भव नहीं, आज ८ महीना बाद वही वेदानुकूल मान बैठे। वास्तव में बात यह है कि यदि पण्डित जी केवल पितृ श्राद्धादि कर्म काण्ड पर ही बने रहते तब तो जीविका का अभाव था क्योंकि बिना मूर्ति पूजादि के माने सनातन-धर्म में कहां प्रवेश हो सक्ता था अतएव पण्डित जी ने स्पष्ट सोचा कि कर्म काण्ड के रगड़े में कहीं हमारा कर्म काण्ड न हो जाय एतदर्थ—

"जातिर्यातु रसातलं गुणगण स्तस्याप्यधोगच्छतात्,
शीलं शैल तटात् पतत्व भिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्य्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तुनः केवलम्,
येनैकेन विनातृणलवाः प्रायाः समस्ताइमे ॥"

अर्थः—जाति चाहे रसातल को चली जावे, गुण समूह उससे भी नीचे चले जावें-शील पहाड़ के किनारे से गिर पड़े, कुटुम्बी चाहे अग्नि में जलकर भस्म हो जावें, और वैरिन शूरता पर चाहे वज्र गिर जावे परन्तु हमको तो अर्थ से प्रयोजन है कि जिस एक धन के बिना सम्पूर्ण संसार के पदार्थ तृण के समान हैं।

ठीक इस पद्य का अनुसरण मान्यवर पण्डित जी ने कर के दिखा दिया क्योंकि व्यर्थ कर्मकाण्ड विषयक आन्दोलन के कारण आ० स० के मनुष्यों का विश्वास पण्डित जी के

ऊपर से हट गया। (और वह इस लिये कि आर्य्यसमाज के विचारशील मनुष्य यह जानते थे कि कर्मकाण्ड की टट्टी की ओट में पण्डित जी शिकार कर रहे हैं और वास्तव में सत्य ही हुआ कि कर्मकाण्ड का तो बहानामात्र था परन्तु वहां पौरा-णिक धर्म के अङ्कुर उत्पन्न हो पल्लवित हो चुके थे जो शीघ्र ही फल ले आये जैसा कि पाठकों के समक्ष पण्डित जी के लेख उपस्थित हैं) रहे सनातन धर्मी तो जब तक पूर्ण १६ आने सनातनी न बनें तब तक क्यों विश्वास करने लगे इसलिये पण्डित जी ने क्रमशः धीरे २ रंग बदलना प्रारम्भ किया। प्रथम मृतक-श्राद्ध माना और मूर्तिपूजादि को वेद विरुद्ध अकर्त्तव्य कहा, जब देखा कि सनातनी हमारे अनुयायी न बनेंगे तब ऊपर लिखा विज्ञापन निकाला जिसमें मूर्तिपूजादि को तृतीय कक्षा में मानते हुए वेदानुकूल माना परन्तु इतना फिर भी माना कि वेदोक्त वैदिक धर्म नहीं किन्तु पौराणिक धर्म है। इसके बाद ब्राह्मण सर्वस्व में धीरे २ स्पष्ट यहां तक मानने लगे कि वेद के प्रत्येक अक्षर से मूर्तिपूजादि सिद्ध होते हैं। अब पाठकगण, आप भले प्रकार विचारें कि क्या पण्डित भीमसेन जी धार्मिक भाव से सनातन धर्मी बनें?

॥ इति ॥